

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! यदि धन नष्ट हो गया है और पिता, पत्नी, पुत्रादि मर गये हों, तो मनुष्य इनके शोक से कैसे अपना उद्धार करे?

भीष्म ने कहा-राजन! उपर्युक्त जैसी स्थिति आने पर मनुष्य सोचे 'ओह! संसार कैसा दुखमय है?' और शम-दम से शोक का निवारण करे। मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। सेनजित नाम के एक राजा थे। उनके पुत्र का मरण हो गया। अतएव वे शोक में डूबे थे। उन्हें एक ज्ञानी ब्राह्मण ने समझाया-राजन! तुम क्यों मूढ़ होकर शोक में पड़े हो? शोक करने योग्य तो तुम स्वयं हो, दूसरे के लिए क्यों शोक करते हो? एक दिन ऐसा आयेगा जब लोग तुम्हारी मृत्यु पर शोक करेंगे, यद्यपि वे सब भी एक-एक दिन मरेंगे और उनके लिए अन्य शोचनीय मनुष्य शोक करेंगे। तुम्हारी, हमारी और ये अन्य लोगों की देहें इसी जड़ प्रकृति में मिल जायंगी जिसमें से बनकर ये निकली हैं।

राजा सेनजित ने ब्राह्मण से कहा-हे ब्राह्मण देव! आपके पास कौन-सा ज्ञान, बुद्धि, तप, समाधि तथा शास्त्र-बल है जिसके कारण आप कभी मोह-शोक में नहीं पड़ते। सुख-दुख का चक्र निरंतर घूमता है। मैं सुख में फूल बैठता हूँ और दुख में पिचक जाता हूँ। अतएव मेरे हृदय में शोक सदैव डेरा डाले रहता है।

ज्ञानी ब्राह्मण ने कहा-संसार में उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्म के मनुष्य हैं। वे अनेक कर्मों में आसक्त होकर दुखों से ग्रस्त हैं। "मैं अकेला हूँ। न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ। न यह शरीर मेरा है और न यह सारी पृथ्वी मेरी है। यह सब जैसे मेरी है वैसे सबकी है।" ऐसा विचारकर मैं कभी पीड़ित नहीं होता। इसी विवेक से मैं कभी शोक नहीं करता। जैसे समुद्र में तैरते हुए काष्ठ एक दूसरे से मिलकर बिछुड़ जाते हैं, वैसे संसार-सागर में प्राणी एक दूसरे से मिलकर बिछुड़ते रहते हैं। अतएव परिवार से मोह नहीं बढ़ाना चाहिए, क्योंकि इनका वियोग एक दिन निश्चित है। राजन! तुम्हारा अपना माना हुआ पुत्र किसी अज्ञात स्थान से आया था और अब वह पुनः अज्ञात स्थान को चला गया। न तुम उसे जानते थे और न वह तुम्हें जानता था, फिर वह तुम्हारा कौन है? तुम क्यों शोक करते हो? विषयों की तृष्णा से दुख है और तृष्णा का नाश सुख है।

राजन! सांसारिक सुख-दुख चक्के की तरह घूमते हैं। तुम सुख से दुख में आ गये हो। दुनिया में न किसी को सदा दुख प्राप्त होता है और न सदा सुख। शरीर ही सुख-दुख का आधार है। देहाभिमानवश किये हुए कर्मों से सुख-दुख मिलते हैं। जीवन शरीर के साथ उत्पन्न होता है और शरीर के साथ ही नष्ट हो

. मोह-शोक-रहित रहने के उपाय

जाता है। मनुष्य आसक्ति के कारण धोखा खाते हैं। बालू का पुल जैसे जल के वेग से बह जाता है, वैसे मनुष्यों की विषयों की कामनाएं सफल नहीं होतीं। आसक्ति के कोल्हू में मनुष्य पिस रहे हैं। मनुष्य स्त्री-पुत्रादि के लिए चोरी आदि नाना दुष्कर्म करता है, परंतु उसका दुखद परिणाम उसे अकेला भोगना पड़ता है। मनुष्य वैसे ही मोह के दलदल में फंसकर नष्ट होते हैं जैसे मिट्टी के दलदल में फंसकर हाथी नष्ट हो जाता है। पुत्र, संबंधी तथा धन के नाश होने पर दावानल की तरह मनुष्य का चित्त जलता है, परंतु सुख-दुख, जन्म-मृत्यु प्रारब्ध के अधीन होते रहते हैं।

न मित्र सुख दे सकता है न शत्रु दुख, न केवल बुद्धि से धन मिलता है और न धन ही सुख दे सकता है। संसार-चक्र की गति अद्भुत है। इसे आत्मज्ञानी ही जानकर इसके मोह-शोक से पार रहते हैं। चाहे कोई हो, प्रारब्ध अनुकूल होने पर ही सुख मिलता है। दूध देने वाली गाय किसकी है? उसके बछड़े की है कि चराने वाले या दुहने वाले ग्वाले की, कि उसके मालिक की या जो उसे चुराकर ले जाता है, उसकी है? वस्तुतः जो उसका दूध पीता है, उसकी है। इसी प्रकार इस संसार में जो सदैव दुख से रहित और मन से प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं का जीवन सफल है।

संसार में जो अत्यंत बुद्धिहीन हैं वे सुखी हैं अथवा जो बुद्धि से परे पहुंच गये हैं, वे सुखी हैं। बीच के लोग दुख भोगते हैं। बुद्धिहीन समझता ही नहीं है, इसलिए वह दुखी नहीं रहता, परंतु वह कल्याण का अधिकारी नहीं है। बीच के लोग चिंता की आग में सदैव जलते हैं। ज्ञानी अंतिम स्थिति में रमते हैं जो बुद्धि से ऊपर उठ जाते हैं, मानसिक जाल से ऊपर, मन-मान्यताओं से ऊपर—“अन्त्येषु रेमिरे धीरा ( , )।” यह स्थिति स्थिर सुख स्वरूप है। जिन्हें आत्मज्ञानजनित स्थिर सुख प्राप्त है, जो द्वंद्वातीत हैं और ईर्ष्या से सर्वथा पार हैं उन्हें न अर्थ पीड़ा देता है और न अनर्थ। मोहग्रस्त लोग अनुकूलता में हर्षित और प्रतिकूलता में शोकित होते हैं। मूर्ख मनुष्य विषयों के दलदल में सदैव डूबे रहते हैं। विषय आरंभ में अत्यंत सुखरूप लगते हैं, परंतु अंत में महा संतापकारक होते हैं। संयम करना दुखद लगता है, परंतु उसका परिणाम सुखद होता है। कार्यकुशल मनुष्य में लक्ष्मी निवास करती है, आलसी में नहीं। विवेकवान को चाहिए कि वह सुख-दुख, प्रिय-अप्रिय जो कुछ प्राप्त हो, सबका स्वागत करे, हिम्मत न हारे। शोक के हजारों स्थान हैं और भय के सैकड़ों स्थान हैं, परंतु वे विवेकहीनों पर ही प्रभाव डालते हैं, विवेकवानों पर नहीं। जो विवेकवान है, कृतप्रज्ञ (परखशक्ति संपन्न), सत-शास्त्रचिंतक, किसी

से द्वेष न करने वाला, मन को वश में रखने वाला, परदोषदर्शन-रहित और इंद्रियजित है, उस मनुष्य को शोक छू नहीं सकता। जो उत्पत्ति-विनाश को देखता है, उसे शोक छू नहीं सकता।

जिससे शोक, ताप और दुख हो, जिसके कारण उद्वेग हो, ऐसे काम से दूर रहना चाहिए। जब हम किसी प्राणी-पदार्थ में ममता कर लेते हैं, तब वे दुख के कारण बनते हैं। कामना-त्याग सुख का साधन है। कामनाओं के पीछे भागने वाला उन्हीं के साथ नष्ट हो जाता है। लोक-परलोक के सारे सुख निष्काम-सुख के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हैं। कामना ही क्रोध का रूप लेता है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे जो अपने मन की सारी कामनाओं को समेट लेता है, वह अपने अंतर्ज्योति स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। वह न अन्य को भय देता है और न अन्य से भय करता है। वह न कोई कामना रखता है और न किसी से द्वेष करता है। वह तो सदा ब्रह्मरूप ही है। जब साधक सारे द्वंद्वों से मुक्त हो जाता है तब “*प्रशान्तात्मा भविष्यति*” पूर्ण शांति हो जाता है। जब मनुष्य किसी प्राणी के साथ पापपूर्ण बरताव नहीं करता, तब वह ब्रह्म ही है। जो इस भयंकर तृष्णा को त्याग देता है, वही सच्चा सुखी होता है।

एक बार पिंगला वेश्या रात में बहुत देर तक पुरुषों की प्रतीक्षा में रही। उनके न आने पर वह उद्विग्न नहीं हुई, अपितु उसे निर्वेद प्राप्त हुआ। उसने गाया-अहो! मेरा असली प्रियतम आत्मा तो सदैव मेरे पास है, परंतु मैं विषयों के मोह में मतवाली होकर उसे आज तक पहचान न सकी। इन नौ द्वारों के घर रूपी शरीर को मैं अब सदैव के लिए बंद कर दूंगी। मेरा प्रियतम आत्मा सदैव मेरे से अभिन्न है। अब हाड़-मांस के पुरुष से क्या प्रयोजन है? अब मैं मोहनिद्रा से जग गयी हूँ, निरंतर जाग्रत हूँ। मैंने विषय-कामनाओं का त्याग कर दिया है। अतएव नरक रूपी धूर्त मनुष्य काम का रूप धारणकर अब मुझे धोखा नहीं दे सकते। कभी दोष भी गुण हो जाता है। आज मेरे पास किसी पुरुष का न आना दोष लगा था, परंतु वह गुण हो गया। अब मुझे सबसे वैराग्य हो गया है। अब मैं आत्मसंतुष्ट हूँ। वस्तुतः जिसे किसी प्रकार की आशा नहीं है, वह सुख से सोता है। आशा का न होना ही परम सुख है। देखो, आशा को निराशा के रूप में बदलकर पिंगला सुख से सोने लगी- “*आशामनाशां कृत्वा हि सुखं स्वपिति पिंगला ( , )*”

उपर्युक्त बातें सुनकर राजा सेनजित शोक छोड़कर सुखी हो गये (अध्याय )।

. आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति से मुक्ति है

## . आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति से मुक्ति है, संतान से उद्धार नहीं

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! काल हर क्षण पीछे लगा है। मनुष्य क्या करने से कल्याण का भागी होगा?

भीष्म ने कहा-पुरानी बात बताऊं। पुराकाल में वेद-शास्त्रों का अध्येता एक ब्राह्मण था। उसको एक पुत्र था जिसका नाम 'मेधावी' था और वह वस्तुतः मेधावी था। उसने अपने पिता से पूछा-पिता जी! मनुष्य की आयु निरंतर तीव्र गति से भाग रही है। अतएव उसे अपने कल्याण के लिए क्या करना चाहिए? पिता ने कहा-द्विज को चाहिए कि वह ब्रह्मचर्यपूर्वक सभी वेदों का अध्ययन करे। इसके बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके संतान पैदा करे जिससे वह पितरों को तारने के लिए पिंडोदक क्रिया करे। इसके साथ यज्ञ करे। इसके बाद वानप्रस्थी बन जाय। इसके बाद संन्यासी होकर मौन भाव से आत्मानुसंधान करे।

पुत्र ने कहा-पिता जी! मृत्यु द्वारा प्राणी निरंतर मारे जा रहे हैं। वह जरा अवस्था से घिरा हुआ है। रात और दिन मनुष्य की आयु को क्षीण करते हैं। ऐसी दशा में आप कैसी शिथिलतापूर्ण बातें करते हैं?

पिता ने कहा-बेटा! तुम मुझे क्यों डरा रहे हो? बताओ तो यह कि प्राणी किससे मारे जा रहे हैं, किससे घिरे हैं और कौन इसे क्षीण कर रहा है?

पुत्र ने कहा-पिता जी! सारे प्राणी मृत्यु द्वारा मारे जा रहे हैं, बुढ़ापा ने इसे घेर रखा है और दिन तथा रात इन्हें क्षीण कर रहे हैं। इस तथ्य को आप क्यों नहीं समझते? रात-दिन निरंतर आकर चले जाते हैं। मृत्यु क्षण भर भी नहीं रुकती है। हम प्राणी उसके जाल के अंदर फंसे हुए ही विचर रहे हैं। ऐसी अवस्था में मैं थोड़ी भी प्रतीक्षा कैसे कर सकता हूँ! एक-एक रात बीतती है और आयु क्षीण होती है। कम पानी में मछली की तरह रहकर कौन सुखी होगा? जिस दिन कोई शुभ कर्म न किया गया वह व्यर्थ गया। मनुष्य की कामनाएं पूरी नहीं होतीं और मौत आ धमकती है। जैसे घास चरती हुई भेड़ को बाध उठा ले जाता है, वैसे मनुष्य का मन सांसारिक बातों में लगे-लगे मौत उसे धर दबोचती है। इसलिए कल्याण का काम आज ही कर लेना चाहिए। हम सबके काम अधूरे पड़े रह जायेंगे और मौत हमें उठा ले जायगी। अतएव कल का काम आज करें तथा शाम का काम सुबह ही कर लें, क्योंकि मौत हमारे काम को नहीं देखती, वह अपने समय पर हमें उठा लेती है।

कौन जानता है कि मृत्यु कब हमें उठा लेगी। मृत्यु जब ले जाना चाहती है तब पहले से सूचना नहीं भेजती। जैसे मछुवारे चुपके से मछली पकड़ लेते हैं, वैसे मौत चुपके से अपना काम कर लेती है। सबको जवानी ही में आत्मकल्याण कर लेना चाहिए। शरीर अनित्य है। मोह में डूबा हुआ मनुष्य ही स्त्री-पुत्र के चक्कर में पड़ता है और उनके पालन-पोषण में न करने योग्य काम भी करता है। जैसे सोये हुए मृग को बाघ उठा ले जाता है, वैसे स्त्री-पुत्र के मोह में डूबे हुए मनुष्य को मौत उठा ले जाती है। मनुष्य भोगों और धनसंग्रह से तृप्त नहीं होता और वह काल के गाल में चला जाता है। मनुष्य सोचता है कि यह काम पूरा हो गया, यह अभी करना है और यह काम अभी अधूरा पड़ा है। इस प्रकार चेष्टाजनित सुख में लिप्त हुए मनुष्य को काल उठा ले जाता है।

मनुष्य अपने खेत, दुकान, व्यवसाय और घर के मोह में फंसा रहता है। उसे अपने किये हुए कर्मों का फल मिल भी नहीं पाता, उसके पहले उसे मौत अपने पंजे में कर लेती है। निर्बल-बलवान, वीर-कायर, मूर्ख-बुद्धिमान सबको मृत्यु अपने वश में कर लेती है। पिता जी! जब इस शरीर में मौत, बुढ़ापा, रोग तथा नाना दुखों का आक्रमण निरंतर हो रहा है, तब आप असावधान होकर क्यों बैठे हैं? स्त्री-पुत्रादि का मोह मृत्यु का मुख है और संयम तथा वैराग्य अमृत का स्थान है, यह श्रुति-वचन है। स्त्री-पुत्रादि का मोह जीव को बांधने की रस्सी है। इसको काटकर निकल जाने वाला कोई शूरवीर होता है। जो अपने मन, वाणी तथा इंद्रियों से किसी की हिंसा नहीं करता, वह शांति पाता है। सत्य अमृत का द्वार है। सत्य और संयम द्वारा मृत्यु के पार अमर आत्मा में विश्राम होता है। अमृत और मृत्यु दोनों इसी शरीर में हैं। मोह मृत्यु है और सत-आत्मा में स्थिति अमृत है। अतएव मैं मन, वाणी तथा इंद्रियों से हिंसा का त्यागकर सत्स्वरूप का अनुसंधान करूंगा। काम-क्रोध को हृदय से निकालकर दुख-सुख में समता भाव रखूंगा और सबके प्रति हितकारी बात सोचकर और अपने अभय स्वरूप में स्थित होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाऊंगा।

मैं निवृत्तिपरायण होकर शांति-यज्ञ, इंद्रियों को वश में करके ब्रह्म-यज्ञ और स्वाध्याय-रत होकर वाणी-यज्ञ करूंगा। इसके साथ ध्यान-रत होकर मनोयज्ञ और गुरुसेवा रूप कर्मयज्ञ करूंगा। मुझ-जैसा प्रज्ञावान मनुष्य हिंसापूर्ण पशु-यज्ञ कैसे करेगा? जिसके मन-वाणी संयत हैं, जो त्याग, तप और सत्य से संपन्न है, वह अपने लक्ष्य को पा लेता है। “सत्स्वरूप आत्मज्ञान के समान नेत्र नहीं है, सत्यपरायणता के समान तप नहीं है, राग के समान दुख नहीं है और त्याग

. अकिंचनता परम सुख है

के समान सुख नहीं है। मैं संतान-रहित होकर आत्मा द्वारा आत्मतः स्वयंभू हूँ और आत्मा में स्थित हूँ। आगे भी आत्मा में ही लीन रहूँगा। मुझे संतान नहीं तारेगी।”

“एकता, समता, सत्यभाषण, सदाचार, स्वरूपस्थिति, अहिंसा, सरलता तथा समस्त सकाम कर्मों से वैराग्य, इसके समान ज्ञानी के लिए कोई धन नहीं है। हे ब्राह्मण! जब आप एक दिन मर ही जायेंगे, तब धन, परिवार, स्त्री आदि से आपका क्या लेना-देना रहेगा? हृदय-गुफा में स्थित आत्मा का अनुसंधान कीजिए। सोचिए, आपके पिता-पितामह कहां गये?”

पुत्र का उपर्युक्त उत्तम उपदेश पाकर पिता अपने कल्याण-मार्ग में लग गया। हे युधिष्ठिर! तुम भी अपने कल्याण-मार्ग में लगे (अध्याय )।

## मीमांसा

यहां पुत्र के मुंह से ब्राह्मणी कर्मकांड से ऊपर उठकर पिता को आत्मज्ञान का उपदेश दिलाया गया है जो प्रज्ञावादी मत है। पुत्र ने कहा है कि मुझ-जैसा प्रज्ञावान हिंसापूर्ण पशुयज्ञ कैसे कर सकता है जिसमें निरपराध जीव मारे जाते हैं। मैं तो शांति-यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ, वाणी-यज्ञ, मनोयज्ञ, गुरुसेवा रूप कर्तव्य-यज्ञ करूँगा और अंततः आत्मलीन हो जाऊँगा।

## . अकिंचनता परम सुख है

भीष्म त्याग की महिमा में शंपाक ब्राह्मण के उद्गार उपस्थित करते हैं, जो भीष्म को ही संबोधित करके कहा था। शंपाक ने कहा-संसार के सभी मनुष्यों को जन्मते ही सुख-दुख प्राप्त होते रहते हैं। हे भीष्म! तुम निष्काम होते हुए भी जो कल्याण-साधना नहीं कर रहे हो, इसका कारण यही है कि तुमने अपने

- 
- . नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।  
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्  
आत्मन्येवात्मना जात आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा।  
आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा , -
- . नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च।  
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः  
किं ते धनैर्बान्धवैर्वापि किं ते किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि।  
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताः पिता च  
( महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक - )

ऊपर राज्य-व्यवस्था का बोझा उठा रखा है। यदि तुम सब कुछ त्यागकर तथा संग्रह-रहित होकर विचरोगे तो सुख का अनुभव करोगे। अकिंचन ही सुख से सोता और जागता है- “अकिंचनः सुखं शेते समुत्तिष्ठति चैव ह ( , )।” संसार में अकिंचनता ही सुख है। वही हितकारी कल्याणप्रद और निर्दोष है। इस पथ में किसी प्रकार के शत्रु का भय नहीं है। यद्यपि अकिंचन होना कठिन है, परंतु ऐसा होना सरल है।

मैं तीनों लोकों पर नजर फेरता हूँ, तो अकिंचन, शुद्ध और सब तरफ से वैराग्य संपन्न मनुष्य के समान कोई नहीं दिखायी देता। जब मैंने अकिंचनता और राज्य को विवेक के तराजू पर तौलकर देखा तो अकिंचनता अधिक भारी लगी। राज्य और अकिंचनता में महान अंतर यह है कि राजा सदैव ऐसा उत्तेजित रहता है कि वह मानो मृत्यु के मुख में पड़ा है। परंतु जो धन का त्यागकर उसकी आसक्ति से सर्वथा मुक्त हो गया है और अंतःकरण से पूर्ण निष्काम है, उस पर न अग्नि का प्रभाव पड़ता है, न अनिष्टकारी ग्रहों का, न मृत्यु का और न चोर-डाकू उसका कुछ बिगाड़ सकते हैं। वह सदैव प्रारब्ध पर निर्भर होकर जीवन-यापन करता है। वह बिना बिस्तर के जमीन पर सोता है। वह हाथों का तकिया लगा लेता है और शांतभाव से रहता है। देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

धनवान तो क्रोध-लोभ के वश होकर अपनी विवेकशक्ति खो देता है। वह टेढ़ी दृष्टि से देखता है, उसका मुख सूखा रहता है, भौंहें चढ़ी रहती हैं और वह पाप में ही डूबा रहता है। वह उत्तेजना में पड़कर ओठ चबाता रहता है और बहुत कटु वचन बोलता है। कौन ऐसे मनुष्य की ओर देखना चाहेगा? धन का सदा साथ करते-करते विवेकहीन की मति भ्रष्ट हो जाती है। जैसे वायु बादल को उड़ा ले जाता है, वैसे संपत्ति मनुष्य के मन को पतित कर देती है। धनमदी को रूप तथा धन का मद सवार रहता है। वह मानता है कि मैं कुलीन हूँ, सफल हूँ। मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूँ। रूप, धन और कुल के अहंकार में डूबा मनुष्य भोगासक्त हो जाता है और अपने पूर्वजों की संचित संपत्ति को भोगों में उड़ा देता है, और इसके बाद दूसरों के धन को हड़पने का प्रयत्न करता है। अपनी उदंडता से वह राजा द्वारा दंडित होता है। अतएव कल्याणार्थी को भोगों का प्रमाद छोड़कर आत्मकल्याण में लगना चाहिए।

त्याग के बिना सच्चा सुख नहीं मिलता, त्याग के बिना सर्वोच्च स्वरूपस्थिति नहीं मिल सकती, त्याग के बिना निर्भय नींद नहीं आ सकती; इसलिए तुम भी सब कुछ त्यागकर सुखी हो जाओ। यथा-

. मंकि मुनि-मंखलि गोशाल का वैराग्य

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।

नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव

(अध्याय , श्लोक )

भीष्म जी कहते हैं कि इस प्रकार शंपाक नामक ब्राह्मण ने हस्तिनापुर में त्याग का महत्त्व बताया था। अतएव त्याग ही सर्वोच्च है (अध्याय )।

### मीमांसा

अकिंचनता का अर्थ है दरिद्रता; परंतु यह दरिद्रता ऐच्छिक है। इसका सरल अर्थ है संग्रह-परिग्रह-रहित होकर थोड़ी वस्तुओं में निर्वाह करना और उत्कट वैराग्यपूर्वक रहकर आत्मशांति में जीवन व्यतीत करना।

### . मंकि मुनि-मंखलि गोशाल का वैराग्य

भीष्म ने कहा-“युधिष्ठिर! सबमें समता का भाव, अनावश्यक परिश्रम का त्याग, सत्यभाषण, विषयों से वैराग्य और कर्मासक्ति का त्याग, ये पांचों सद्गुण जिसमें होते हैं, वह मनुष्य सुखी रहता है।” परिपक्व विवेकवान इन्हीं पांचों को शांति का कारण बताते हैं। यही स्वर्ग है, यही धर्म है और यही परम उत्तम सुख है।

युधिष्ठिर! मंकि नाम के मुनि ने भोगों से विरक्त होकर जो उद्गार प्रकट किया था, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। मंकि मुनि पहले धन-प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न करते रहे, परंतु उन्हें सफलता न मिली। जब उनके पास थोड़ा धन बच रहा था, तो उसे देकर उन्होंने दो बछड़े खरीदे और एक दिन वे उन दोनों बछड़ों को एक में जोड़कर हल चलाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए जा रहे थे। जब वे बछड़े गांव से निकले तब अपनी चंचलता के कारण वे एक बैठे हुए ऊंट को बीच में लक्ष्य करके दौड़ पड़े। जब वे ऊंट की गर्दन के पास पहुंचे तो ऊंट भड़ककर खड़ा हो गया और उन दोनों को अपनी गर्दन में टांगकर जोर से भागने लगा। ऊंट के द्वारा दोनों बछड़ों को अपहृत होते तथा मरते देखकर मंकि ने कहा-मनुष्य कैसा भी बुद्धिमान हो, जो उसके भाग्य में नहीं है उसे वह नहीं पा सकता। हठपूर्वक पुरुषार्थ करने से क्या लाभ होगा? जहां पुरुषार्थ सफल

---

. सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत।

निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात् स सुखी नरः ,

होता दिखता है, वहां भी भाग्य ही होगा। अतएव सुख चाहने वाले मनुष्य को धन के पीछे न पड़कर वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए। धन की कामना त्यागकर जो वैराग्य भाव में रहता है वह सुख से सोता है।

अहा, शुकदेव मुनि ने राजा जनक के राजभवन से निकलकर वन में जाते समय कहा था—एक मनुष्य मनोवांछित भोग पा लेता है और दूसरा सारी वांछाओं का त्यागकर देता है, तो पहले वाले से यह पीछे वाला ही श्रेष्ठ है जिसने अपनी सारी कामनाओं का परित्याग कर दिया है। आजतक कोई मनुष्य अपनी कामनाओं का अंत नहीं पा सका है। कामनाओं को त्यागने से ही शांति मिलती है। मूर्ख मनुष्य ही भोगों की तृष्णा में भटकता है। हे कामनाओं का गुलाम मन! तू सारी इच्छाओं को त्यागकर वैराग्य वृत्ति का आश्रय ले और शांति में स्थित हो। तू धन की चेष्टा में बारंबार ठगा गया है, तो भी तू उससे विरक्त नहीं होता है। हे मन! यदि तू मेरा विनाश नहीं चाहता है और स्वयं आनंद में रहना चाहता है तो मुझे लोभ में मत फंसा। तूने बारंबार धन का संचय किया और वह नष्ट होता रहा। हे मूढ़ मन! क्या तू कभी धन की तृष्णा का त्याग भी करेगा?

हाय, यह मेरी कैसी मूर्खता है कि मैं मन का दास बना भटक रहा हूँ। यदि मनुष्य अपने महत्त्व को समझ जाय, तो वह धन के लिए दूसरे की गुलामी नहीं कर सकता। मनुष्य अपने मन की कामनाओं का न अंत पा सका है और न पा सकेगा। कामनाओं के त्याग से ही उसका अंत पा सकता है। मैं सदा कामनाओं के पीछे भागता रहा, परंतु उनका अंत न पा सका, और कामनाओं को पालकर कभी सुख न पा सका। हे काम! तू संकल्प से उत्पन्न होता है। अब मैं संकल्प ही त्याग दूंगा, जिससे तू नष्ट हो जायगा। धन की इच्छा करना दुखदायी है। वह मिल जाय तो उसकी रक्षा कष्टकर है। यदि धन मिलकर नष्ट हो जाय तो अपनी मौत हो जाती है। उद्योग करने पर भी धन मिलेगा या नहीं, यह बात निश्चित नहीं है। शरीर का उत्सर्ग करने पर भी धन नहीं मिलता। यदि मिल जाय, तो उतने से संतोष नहीं होता है। वह और अधिक चाहता है। यह धन की तृष्णा दुख पैदा करती है। यह मेरे पतन का कारण है। अतएव मैं धन की तृष्णा तथा भोगों की कामना का त्यागकर केवल संतोष का आश्रय लूंगा।

शरीर में स्थित समस्त जड़ तत्त्व, मन, अहंकार आदि को मैं अपने से भिन्न समझकर योग में आरूढ़ हूँ, और श्रवण-मनन करते हुए मन को आत्मा में स्थित कर तथा शोक-मोह से मुक्त हो अनासक्त होकर संसार में विचरण करता हूँ। हे काम! तृष्णा, शोक और व्यर्थ परिश्रम का उत्पत्ति स्थान तू ही है। दरिद्रता

. मंकि मुनि-मंखलि गोशाल का वैराग्य

दुख और अपमानजनक है और धन भी दुखों का उत्पादन करता है। लुटेरे धनी आदमी को कष्ट देकर उसके धन को लूटना चाहते हैं। कामना पाताल की तरह है जिसे भरना असंभव है।

मंकि ने आगे कहा-अकस्मात् धन का नाश होने से मेरे मन में सबसे वैराग्य हो गया है। अब भोगों की इच्छा नहीं करूंगा। जो लोग मेरे से गलत बरताव करेंगे, मेरा तिरस्कार करेंगे, मुझे मारे-पीटेंगे, मैं उन्हें सह लूंगा, परंतु उनके साथ मैं वैसा बरताव नहीं करूंगा। मैं अपने द्वेषी और वैरी को भी अप्रिय वचन नहीं कहूंगा। मैं यथाप्राप्त में संतुष्ट और संयम से जीवन बिताऊंगा।

मैं वैराग्य, निवृत्ति, तृप्ति, शांति, सत्य, दया, क्षमा, संयम आदि सद्गुणों का धनी हो गया हूँ जो सर्वोच्च धन है। अब काम, लोभ, तृष्णा, कृपणता मेरे पास कैसे रह सकते हैं? मनुष्य कामनावश दुख पाता है। जब वह कामनाओं को छोड़ देता है, तब महा सुखी हो जाता है। दुख, निर्लज्जता, असंतोष आदि कामना से ही उत्पन्न होते हैं। जैसे गरमी में मनुष्य गहरे सरोवर में प्रवेश कर शीतल हो जाता है, वैसे मैं अपने ब्रह्मस्वरूप आत्मा में प्रतिष्ठित होकर पूर्ण शीतल हो गया हूँ। अतएव “शाम्यामि परिनिर्वाणि सुखं मामेति केवलम् ( , )।” अर्थात् मैं शांति और सब तरफ से परिनिर्वाण को पा गया हूँ। अब मैं केवल सुख में निमग्न हूँ।

लोक-परलोक के सारे सुख तृष्णा-क्षय के सुख के सोलहवें भाग में भी नहीं हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य और ममता, ये देहधारियों के सात शत्रु हैं। इनमें काम-शत्रु सबसे प्रबल है। काम सहित इन सारे शत्रुओं को मारकर मैं अविनाशी ब्रह्मपुर (आत्मानंद) में प्रवेश कर परम सुख का सम्राट हो गया हूँ।

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! इसी बुद्धि का सहारा लेकर मंकि मुनि ने संपत्ति और भोगों से विरक्त होकर और सारी कामनाओं का परित्याग कर महान ब्राह्मी सुख को प्राप्त किया। यथा-

एतां बुद्धिं समास्थाय मंकिनिर्वेदमागतः।  
सर्वान् कामान् परित्यज्य प्राप्य ब्रह्म महत्सुखम् ,

## मीमांसा

बौद्ध-जैन ग्रंथों में जिन्हें मंखलि गोशाल कहा गया है, उन्हें पाणिनि ने मस्करी कहा है और उन्हीं को शांतिपर्व में मंकि कहा गया है। ये नियतिवादी थे। नियत को दिष्टवाद भी कहा जाता है। दिष्ट का अर्थ है भाग्य। “पतंतजलि

ने मस्करी शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है- *मा कृत कर्माणि मा कृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः* ( , , )। निर्वेद या शम या शांति का सिद्धांत इस दर्शन में मुख्य था।”

महाभारत के इस अध्याय में भीष्म द्वारा मंकि मुनि अर्थात् मंखलि गोशाल के मूल सिद्धांत को आरंभ में बता दिया है-

- . सर्वसाम्यम् -सबसे समता का भाव और बरताव करना।
- . अनायासम् -कोई परिश्रम न करना, कोई चेष्टा न करना।
- . सत्य वाक्यम् -सत्य बोलना।
- . निर्वेद-संसार से वैराग्य।
- . अविधित्सा-निर्लोभता एवं अलिप्सा। कुछ पाने की इच्छा न रखना, अकिंचन रहना।

मंकि महाराज का भाग्यवाद एकांगी है। भाग्य भी किसी दिन का हमारा पुरुषार्थ ही है। जीव के कर्म ही भाग्य बनते हैं। अनायास एवं क्रिया-रहित रहना चाहिए, यह केवल समाधिकाल की बात है। कोई मेरे मुख में ग्रास डाल दे, तो उसे घुटकने का प्रयास तो मुझे ही करना पड़ेगा। बिना परिश्रम के जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। अतएव निष्काम भाव से कर्म करना ही सुरक्षित रास्ता है। शांति-इच्छुक को अधिक प्रवृत्ति से बचना चाहिए। इस प्रकार मंकि मुनि का अनायास ही थोड़ा संशोधनीय है, शेष सब ठीक है।

## . बोध्य मुनि के छह गुरु, वैराग्योपदेश

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! इसी विषय में जनक ने कहा था-मेरे पास बहुत धन है, फिर भी मेरा कुछ नहीं है। मिथिला नगर में आग लग जाय, तो भी मेरा कुछ नहीं जलता है। युधिष्ठिर! इसी विषय में वैराग्य से भरी वाणी बोध्य मुनि के वचन हैं। किसी समय राजा नहुष के पुत्र राजा ययाति ने बोध्य मुनि से कहा था कि मुनेश्वर! आप ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मुझे शांति मिले। आप शांति और संतोष में विचरते हैं, इसका आधार कौन-सी समझ है?

बोध्य मुनि ने कहा-राजन! मैं किसी को उपदेश नहीं देता, अपितु दूसरे द्वारा पाये हुए उपदेशों से आचरण करता हूँ। मेरे उपदेष्टा गुरु छह हैं, वे हैं-पिंगला वेश्या, क्रौंच पक्षी, सर्प, पपीहा, बाण बनाने वाला और कुमारी कन्या।

. बोध्य मुनि के छह गुरु, वैराग्योपदेश

. पिंगला वेश्या-आशा शक्तिशाली है जो जीव को भटकाती है, और नैराश्य हो जाना परम सुख है। जब पिंगला वेश्या ने पुरुष-मिलन की आशा का सर्वथा त्यागकर दिया, तब वह सुख से सोयी, अतएव सुख चाहने वालों को सबकी आशा छोड़ देना चाहिए।

. क्रौंच पक्षी (कुरर)-क्रौंच पक्षी अपनी चोंच में मांस का टुकड़ा लेकर उड़ रहा था। उस मांस को छीनने के लिए अन्य पक्षी उसके पीछे लगे थे। क्रौंच ने जब मांस का टुकड़ा छोड़ दिया, तब लुटेरे पक्षियों ने उसका पीछा छोड़ दिया। इस प्रकार भोगों को छोड़ देने वाला झगड़े से छुट्टी पा जाता है।

. सर्प-सर्प अपने रहने के लिए घर नहीं बनाता। वह कहीं भी बिल में घुसकर रह लेता है। घर बनाने की खटपट दुखदायी है। अनिकेत रहना सुखद है।

. पपीहा-किसी से वैर नहीं करता। वह पीव-पीव करके अपना निर्वाह करता है। अतएव भिक्षावृत्ति से निर्वाह करके मुनिजन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

. बाण बनाने वाला-बाण बना रहा था। उसके पास से राजा की सवारी निकली, परंतु उसे इसका पता न चला, क्योंकि वह अपने काम में एकाग्र था। यहां एकाग्रता की सीख मिली।

. कुमारी कन्या-घर में कोई नहीं था, केवल कुमारी कन्या भी। उसके यहां अभ्यागत आ गये। घर में चावल नहीं था, धान था। उसने अभ्यागतों की सेवा के लिए ओखली में धान डालकर मूसल से कूटना शुरू किया। उसके हाथों में शंख की चूड़ियां थीं वे खनकती थीं। अतएव उसने उन्हें एक-एक कर उतारना शुरू किया। जब तक दो रहीं तब तक बजती रहीं, जब हाथों में एक-एक चूड़ी रह गयी तब बजना बंद हो गया।

“बहूनां कलहो नित्यम्” बहुत लोग एक साथ रहते हैं तो नित्य कलह होता है और “द्वयोः संकथन ध्रुवम्” दो साथ रहें, तो बातचीत होना पक्का है ही, अतएव “एकाकी विचरिष्यामि” मैं अकेला ही विचरूंगा, यह निश्चय हुआ (अध्याय )।

## मीमांसा

बोध्य मुनि ने पिंगला वेश्या से आशा-त्याग, क्रौंच पक्षी से भोग-त्याग, सर्प से बे-घर रहने, पपीहा से भिक्षावृत्ति, बाण बनाने वाले से एकाग्रता तथा कुमारी

कन्या की एक-एक चूड़ी से अकेला रहने के उपदेश ग्रहण किये। ध्यान रहे, अकेला रहना बहुत परिपक्वता चाहता है। साधक का वरिष्ठ संतों के साथ रहकर कल्याण है। अकेला होकर भटक जायगा।

## . एक वैराग्यवान मुनि द्वारा अजगर वृत्ति का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! मनुष्य किस आचरण से चलकर जीवन में शोक-रहित रहकर अंत में उत्तम गति पा सकता है? भीष्म ने कहा-इस विषय में एक पुराना इतिहास है। प्रह्लाद और एक मुनि के संवाद में इस तरह बात आती है। एक स्थिरचित्त, दुख और शोक से रहित तथा प्रज्ञावान ब्राह्मण को देखकर राजा प्रह्लाद ने उससे पूछा-“ब्रह्मन्! आप स्वस्थ, शक्तिमान, कोमल, इंद्रियजित, कर्मारंभ से रहित, पर-दोष-दर्शन-रहित, मधुरभाषी, निर्भय, प्रतिभावान, मेधावी तथा प्रज्ञावान होकर भी बालकवत सरल होकर विचर रहे हैं।” न आप लाभ के लिए लालायित हैं और न हानि से दुखी। आप नित्य तृप्त हैं। आपके लिए न कुछ प्रिय है और न अप्रिय। मनुष्य-समूह काम-क्रोध के प्रवाह में बह रहा है; परंतु आपके लिए द्वंद्व है ही नहीं। आप धर्म, अर्थ और काम से भी चेष्टाहीन हैं। आप इनका अनुष्ठान ही नहीं करते। आप साक्षी होकर मुक्त रूप रहते हैं। आपके पास कौन-सी प्रज्ञा, शास्त्र-ज्ञान तथा वृत्ति है जिनके प्रभाव से आपका जीवन ऐसा निर्मल बन गया है? आप मुझे भी इसका साधन बतायें।

मुनि ने कहा-देखो प्रह्लाद! इन प्राणियों के उत्पत्ति, वृद्धि, हानि और विनाश का कोई कारण नहीं है। इसलिए मैं इन बातों को लेकर न प्रसन्न होता हूँ और न पीड़ित। स्वभाव से ही प्राणियों की प्रवृत्तियां प्रकट होती हैं। अतएव समस्त प्राणी स्वभाव में तत्पर हैं। इनका अन्य कारण नहीं है। ये किसी भी स्थिति में संतुष्ट नहीं हैं। सारे संयोग वियोग में तथा सारा संग्रह विनाश में लीन होता है, इसलिए मैं अपने मन को कहीं भी नहीं लगाता हूँ। सारा त्रिगुणात्मक जगत नाशवान है। जो मनुष्य उत्पत्ति-विनाश देखता है, उसे कुछ करना शेष नहीं रहता चाहे समुद्र में पैदा होने वाले भीमकाय जल-जंतु हों और चाहे नाली के सूक्ष्म कीड़े, सबकी मृत्यु निश्चित है। आकाशचर जंतु भी मरते हैं। आकाश से तारे भी टूटकर गिरते देखे जाते हैं। अतएव सारे दृश्यवान निर्मित पदार्थों को

---

. स्वस्थः शक्तो मृदुर्दान्तो निर्विधित्सोऽनसूयकः।

सुवाक् प्रगल्भो मेधावी प्राज्ञश्चरसि बालवत्

एक वैराग्यवान् मुनि द्वारा अजगर वृत्ति का वर्णन

नाशवान् देखकर मैं संसार से थक गया हूँ और सबके साथ समता का भाव रखकर सुख से सोता हूँ।

भोजन मिला तो पेटभर खा लेता हूँ, थोड़ा मिला तो उसी में संतोष, एक ग्रास मिला तो उसी में संतुष्ट, कुछ न मिला तो भी मस्तराम! कभी चावल की कनी का भात, तो कभी तिल की खली, तो कभी अच्छे चावल का भात खाता हूँ। कभी पलंग पर सोता हूँ, तो कभी नंगी जमीन पर और कभी भवन के भीतर उत्तम शय्या पर। मैं कभी सन के वस्त्र पहनता हूँ, कभी वल्कल, कभी रेशम, कभी मृगचर्म, और कभी बहुमूल्य पुष्कल वस्त्र। धर्मानुकूल निर्वाह की वस्तुएं मिलें तो मैं उनका तिरस्कार नहीं करता और न किसी वस्तु की कामना करता हूँ।

मैं पवित्र अजगर वृत्ति का आचरण करता हूँ। यह अविचल, मृत्युभय-रहित, कल्याणमय, शोक-हीन, शुद्ध, अनुपम और विवेकियों के मतानुकूल है। मूर्ख मनुष्य न इसे समझते हैं और न इसका सेवन करते हैं। मैं स्थिर-बुद्धि तथा स्वधर्म में दृढ़ हूँ। मेरा संसार-व्यवहार छोटा हो गया है। मुझे ऊंच-नीच का ज्ञान है। मैं भय, लोभ, मोह आदि कषायों से दूर हूँ और पवित्र अजगर वृत्ति में स्थिर हूँ। यह व्रत मेरे हृदय को सुखदायी है। भक्ष्य, भोज्य, पेय आदि निर्वाहिक वस्तुओं के मिलने के लिए कोई निश्चित व्यवस्था नहीं रहती है। जो जब मिल जाय, उसी से निर्वाह कर लेता हूँ। प्रारब्ध के परिमाणानुसार तथा विभक्त देश-कालानुसार जो कुछ मिल जाय उसी में संतुष्ट रहता हूँ। विषय-लोलुप इस ढंग से नहीं रह सकते। वे तो यह मिल जाय, वह मिल जाय, इसकी तृष्णा में पिसते रहते हैं और ऐश्वर्य न मिलने पर दुखी होते हैं। ऐसे लोगों को देखकर मैं प्रज्ञा से संपन्न पवित्र अजगर वृत्ति में रहता हूँ। मैं देखता हूँ कि श्रेष्ठ मनुष्य भी धन की इच्छा से मलिन मनुष्यों के सामने दीन होकर उनका आश्रय लेते हैं। ऐसा समझकर मेरा मन उससे विरत होकर शांत हो गया है। मैं निरंतर 'आत्मवान् प्रशान्तः' अपने स्वरूप में लीन एवं शांत हूँ। सुख-दुख, लाभ-हानि, अनुकूल-प्रतिकूल और जीवन-मरण प्रारब्ध के अनुसार है। अतएव ऐसा जानकर मेरे भय, राग, मोह और अभिमान नष्ट हो गये हैं। मैं धृति, मति तथा बुद्धि से संपन्न पूर्ण शांत हूँ। स्वाभाविक मिले हुए निर्वाहिक पदार्थों का उपयोग कर संतुष्ट रहता हूँ।

मेरे सोने तथा बैठने के निश्चित स्थान नहीं हैं। मैं स्वभावतः दम, नियम, व्रत, सत्य तथा पवित्राचार से संपन्न हूँ। मेरे कर्म-फल-संचय का नाश हो गया है। मैं प्रसन्न मन पवित्र अजगर वृत्ति का आचरण करता हूँ। दुख उत्पन्न करने

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

वाली समस्त विषय-इच्छाओं से जो विरक्त हैं, ऐसे 'आत्मसंस्थम्' आत्मनिष्ठ पुरुषों को देखकर मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। अतएव मैं तृष्णा के प्रभाव से भटके हुए मन को अपने वश में करके पवित्र अजगर वृत्ति में स्थित हूँ। विषय-भोग मन, वाणी तथा बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं। भोग स्वयं दुर्लभ भी हैं। इसके साथ ये नाशवान हैं; अतएव इनकी उपेक्षा कर मैं पवित्र अजगर वृत्ति में स्थित हूँ। प्रज्ञावानों ने गहन तर्क-वितर्क करके इस अजगर वृत्ति का निर्धारण किया है।

मूर्ख लोग उपर्युक्त अजगर वृत्ति को वैसे ही भयंकर मानते हैं जैसे पर्वत की ऊंची चोटी से नीचे गिरना। वस्तुतः उनकी मान्यता भिन्न है; किन्तु मैं इस पवित्र अजगर वृत्ति को अज्ञान का नाशक और विकारों से रहित मानता हूँ। अतएव मैं दोष और तृष्णा त्यागकर मनुष्यों में विचरता हूँ।

भीष्म ने कहा-राजन! जो मनुष्य राग, भय, लोभ, मोह तथा क्रोध को त्यागकर इस पवित्र अजगर वृत्ति का पालन करता है, "स खलु सुखी विचरेदिमं विहारम् ( , )" वह निश्चित ही संसार में सुखी होकर विचरता एवं विहार करता है। (अध्याय )।

## मीमांसा

उपर्युक्त मत और रहनी स्वभाववादी वैराग्यवान मुनियों के हैं। बुद्धकाल के पहले और उनके पीछे भी नाना मत के तपस्वी होते थे जिनके कुछ विचारों में अंतर रहता था, और अधिक बातों में समता रहती थी। वे सब वैराग्यवृत्ति से आचरण करने वाले होते थे। इनका वर्णन बौद्ध-जैन ग्रंथों में आया है। महाभारत के लेखकों ने इस संदर्भ में उनमें से कुछ का चित्रण किया है। सारग्राही सबसे सार लेते हैं।

**. मनुष्य के दो हाथ हैं, वह निराश न होकर श्रम करे,**

**काश्यप को शृगाल का उपदेश**

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! भाई-बंधु, कर्म, धन तथा प्रज्ञा इनमें से मनुष्य किसका आश्रय ले? भीष्म ने कहा-मनुष्य का प्रधान आश्रय प्रज्ञा है। प्रज्ञा ही बड़ा लाभ है, प्रज्ञा ही कल्याणदायी है और प्रज्ञा ही स्वर्ग है। राजा बलि ने अपना ऐश्वर्य क्षीण होने पर प्रज्ञा के बल पर ही उसे पुनः पाया था। प्रह्लाद, नमुचि और मंकि ने भी प्रज्ञा के बल पर अपना-अपना प्रयोजन सिद्ध किया था।

. मनुष्य के दो हाथ हैं, वह निराश न होकर श्रम करे

संसार में प्रज्ञा से बढ़कर क्या है? इस विषय में इंद्र और काश्यप का संवाद रूप पुराना इतिहास है।

पुरानी बात है, एक धनी सेठ ने अपने मतवालेपन में अपने रथ के चक्के से धक्का देकर काश्यप नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण को गिरा दिया था। काश्यप पीड़ित हुए और अपमान-बोध से दुखी होकर आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गये। वे दुखी होकर कहने लगे-मैं प्राण त्याग दूंगा, क्योंकि संसार में निर्धन मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। काश्यप के मन में धन पाने का लोभ था। वे हीन भावना से ग्रस्त होकर अपमान-बोध से व्यथित हो आत्महत्या के लिए आमरण अनशन में बैठ गये।

इंद्र शृगाल का रूप धारणकर काश्यप के पास आये और इस प्रकार उनसे कहने लगे-काश्यप! आप मनुष्य हैं और विद्वान ब्राह्मण भी हैं, फिर आप आत्महत्या करने के लिए कैसे तत्पर हो गये? सत्य का प्रतिपादन करने वाली श्रुति कहती है कि सारे लौकिक लाभ अभिमानपूर्ण हैं। आपका तपस्वी स्वरूप तो संतोष करने योग्य है। आप उसकी अवहेलना क्यों करते हैं? “अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः ( , )।” जिसके पास हाथ हैं, उसको तो मैं कृतार्थ मानता हूँ। हाथ वाले मनुष्य का शरीर पाने की मुझे बारंबार इच्छा होती है। जैसे आपको धन पाने की इच्छा है, वैसे हम पशुओं को हाथ वाले मनुष्य शरीर पाने की इच्छा होती है। हमारे विचार से हाथ मिलने के समान कोई लाभ नहीं है। ब्रह्मन्! हमारे शरीर में कांटे गड़ जाते हैं, हाथ न होने से हम उन्हें निकाल नहीं सकते। छोटे-छोटे जीव-जंतु हमें डंसते और काटते हैं, उन्हें भी हम हाथ न होने से हटा नहीं सकते। परंतु जिनके सौभाग्य से दस अंगुलियों वाले दो हाथ हैं, उनको यह समस्या नहीं है। वे वर्षा, सर्दों और धूप से अपनी रक्षा कर लेते हैं। वे कपड़े पहनते, सुखपूर्वक अन्न खाते, बिस्तर बिछाकर सोते और एकांत का उपभोग करते हैं। हाथ वाले मनुष्य बैलों से जुती हुई गाड़ी पर बैठकर उसे हांकते, उसका उपभोग करते तथा हाथ से अनेक प्राणियों को वश में कर लेते हैं। जो दुख बिना हाथ वाले, दीन, दुर्बल और असमर्थ प्राणियों को है वह दुख तो आपको नहीं है।

यह आपका महान सौभाग्य है कि आप गीदड़, चूहा, कीड़ा, सांप, मेढक आदि नहीं हैं। मुझे ये कीड़े खा रहे हैं। मेरे हाथ न होने से मैं इन्हें दूर नहीं कर सकता। बिना हाथ वाले मेरी दुर्दशा को आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आत्महत्या करना पाप है यह समझकर मैं आत्महत्या नहीं करता हूँ, क्योंकि इसके पाप से तो मैं और अधम योनि में चला जाऊंगा। कुछ प्राणी सुखी होते हैं और कुछ जन्म से ही दुखी होते हैं। परंतु ऐसा कोई नहीं है जो केवल सुखी हो।

मनुष्य धनी होने पर राज्य पाना चाहता है। राज्य पाने पर देवता बनना चाहता है, देवता बन जाने पर इंद्र बनना चाहता है। यदि आप धनी हो जायं, तो राजा तो नहीं हो जायंगे। यदि राजा हो जायं तो देवता नहीं हो सकते। यदि देवता या इंद्र हो जायं तो भी उतने से संतुष्ट नहीं हो सकते। प्रिय पदार्थ प्राप्त होने पर कभी तृप्ति नहीं होती। घी डालने से जैसे आग नहीं बुझती, वैसे भौतिक उपलब्धियों से मन तृप्त नहीं होता। तुम्हारे भीतर हर्ष-शोक, सुख-दुख सब हैं। ये सब मन के विकार हैं। जैसे मनुष्य पक्षी को पिजड़े में बंद कर देता है, वैसे आप अपने मन-इंद्रियों को अपने वश में कर लें, तो सारा भय समाप्त हो जायगा। मनुष्य को दूसरे सिर तथा तीसरे हाथ के कटने का भय नहीं रहता, क्योंकि वे हैं ही नहीं। जो अमुक विषय का स्वाद नहीं लिए है, वह उसकी इच्छा कभी नहीं करता। छूने से, देखने से और सुनकर वासना उदय होती है। आप शराब और मांस का कभी स्मरण नहीं करते होंगे, क्योंकि इनको आपने कभी नहीं पीया-खाया है, परंतु जो लोग इनके व्यसनी हैं, वे इनके लिए ललचाते हैं। अतएव किसी वस्तु को न खाने, न छूने और न देखने का नियम लेना ही कल्याणार्थी के लिए अच्छा है।

जिसके दोनों हाथ सुरक्षित हैं, वे ही भाग्यवान और धनवान हैं। मनुष्यों को तो मनुष्यों ने ही गुलाम बना रखा है। कितने मनुष्य दूसरों के बंधन में रहते हैं। वे उनके द्वारा गाली-मार पाते हैं, परंतु वे भी आत्महत्या करने की बात नहीं सोचते, अपितु वे आपस में खेल करते, आनंदित होते और हंसते हैं। कितने बल-विद्या से संपन्न मनुष्य दीन, निंदित और नीच कर्म से जीविका चलाते हैं। वे उससे ऊपर उठना चाहते हैं, किंतु अपने दुर्भाग्यवश वैसा नहीं हो पाते। भंगी भी अपना शरीर नहीं त्यागना चाहता है। देखो, कैसी माया है! काश्यप! कुछ लोग लूले हैं, लंगड़े हैं, लकवाग्रस्त हैं, अंधे हैं, किंतु आप तो सर्वांग स्वस्थ हैं। आप अपनी उन्नति के लिए उठकर खड़े हो जायं। जो व्यक्ति उत्साहपूर्वक अपने कर्तव्य कर्मों में लगा रहेगा, वह आत्महत्या करने की बात कभी नहीं सोचेगा।

शृगाल ने आगे कहा-पहले जन्म में मैं एक पंडित था, तर्क द्वारा वेदों की निंदा करता था। आन्वीक्षिकी विद्या के द्वारा निरर्थक कुतर्क करता फिरता था। मैं सभा में जाकर तर्क और युक्ति की बात बहुत बोलता था। जहां दूसरे ब्राह्मण वेदवाक्यों पर विचार करते थे, वहां मैं जोश में भरकर उनकी बातों का खंडन किया करता था। मैं नास्तिक सब पर शंका करने वाला तथा मूर्ख होकर भी अपने को पंडित मानता था। उसी के परिणाम में मैं आज शृगाल (सियार) होकर अपने कर्मों के फल भोग रहा हूं। अब मैं मनुष्य-शरीर की स्ववशता से

. कर्म-फल-भोग तथा उससे मुक्त होकर दिव्य स्थिति

रहित हूँ। मनुष्य जानने योग्य को जान सकता है और त्यागने योग्य वस्तु को त्यागकर शांति पा सकता है।

उक्त बातें सुनकर काश्यप मुनि बहुत आश्चर्यित हुए और खड़े होकर बोले— आप तो बहुत बुद्धिमान और कुशल हैं। फिर उन्हें शृगाल में इंद्र दिखायी दिये, इसलिए उन्होंने उनकी पूजा की और अपने घर लौट गये (अध्याय )।

### मीमांसा

उपर्युक्त कहानी के माध्यम से हाथ वाले मनुष्य के सौभाग्य का वर्णन किया गया है और यह वर्णन बिना हाथ वाले भुक्तभोगी पशु से कराया गया है। कहानी बहुत मधुर और निराशाग्रस्त व्यक्ति के मन में आशा जगाने वाली है। कहानी तो काल्पनिक है। न इंद्र कोई व्यक्ति है और न शृगाल मनुष्य की समझ रख सकता है, न मानुषी भाषा बोल सकता है। कहानी बात समझाने के लिए गढ़ी जाती है।

मनुष्य के दो हाथ हैं। वह उनसे काम करे और अपना तथा अपने आश्रयी-जनों का भरण-पोषण करे। वह निराशाग्रस्त न हो।

शृगाल से कहलाया गया है कि वह पहले जन्म में आन्वीक्षिकी विद्या का पंडित था और वेदों पर कुतर्क करता था। इसी पाप से शृगाल हो गया। जब वह शृगाल इंद्र था तब कुतर्की पंडित कैसे हो गया? यह कथालेखक की भूल है। वस्तुतः आन्वीक्षिकी विद्या स्वस्थ विद्या थी। उसके पंडितों से कर्मकांडी पंडित घबराते थे और उनकी सत्य युक्तियों के सामने टिक नहीं पाते थे, तब वे उन्हें नास्तिक कहकर उनको निंदित करते थे। यह उनकी हृदयहीनता थी।

चाणक्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ अर्थशास्त्रम् के प्रारंभ में ही आन्वीक्षिकी विद्या की प्रशंसा करते हुए लिखा है—‘सभी विद्याओं का प्रकाशक, सभी कर्मों का उपाय तथा सभी धर्मों का आधार नित्य आन्वीक्षिकी मत है।’ मूल वचन इस प्रकार है—

*प्रदीपः सर्वाविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।*

*आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता*

(कौटिलीय अर्थशास्त्रम् , )

### . कर्म-फल-भोग तथा उससे मुक्त होकर

#### दिव्य स्थिति

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! क्या शुभाशुभ कर्मों के फल होते हैं? भीष्म ने कहा—मनुष्य काम-क्रोध आदि विकारी प्रवृत्तियों से लिप्त होकर पाप-कर्म करते हैं, उनका उन्हें दुखमय फल मिलता है। पवित्र प्रवृत्तियों से युक्त मनुष्य

शुभकर्म करते हैं, उन्हें उनका उत्तम फल मिलता है। जिस मनुष्य के जीवन में धर्म नहीं है, वह धान में घास की तरह है। मनुष्य द्वारा किये गये अच्छे या बुरे कर्म उसके पीछे लगे रहते हैं। प्राणी दौड़ता है तो उसके पीछे उसके कर्म दौड़ते हैं। जब प्राणी सोता है तब कर्म भी उसके साथ सोते हैं। जब प्राणी खड़ा होता है तब उसके कर्म भी खड़े होते हैं। जब प्राणी चलता है तब उसके पीछे उसके कर्म भी चलते हैं। कोई कर्म करते समय भी कर्म साथ नहीं छोड़ते। कर्म जीव के साथ छाया की तरह लगे रहते हैं।

अपने कर्म धरोहर के समान हैं जो कर्मजनित अदृष्ट द्वारा सुरक्षित रहकर उसके सामने समय से भोग उपस्थित करते हैं। जैसे फूल और फल किसी बाहरी प्रेरणा के बिना वृक्ष में उदय हो जाते हैं, वैसे समय आने पर जीव के कर्म-फल अपने आप उदय हो जाते हैं। जितने सुख-दुख जीवों को मिलते हैं वे सब उन्हीं के बनाये हुए कर्मों से होते हैं। जीव माता के गर्भ से अपने कर्मों के फल पाने लगता है। जैसे बछड़ा हजारों गायों के बीच में अपनी माता को पहचान लेता है, वैसे कर्म कर्ता के पास पहुंच जाते हैं। वस्तुतः कर्म कर्ता के मन में ही चिपके रहते हैं और वे फल देते हैं। जैसे छारद्रव्य में भिगाया हुआ कपड़ा धोने से साफ हो जाता है, वैसे सत्य, अहिंसा, क्षमा, शम, दम आदि सदगुणों का अभ्यास करने से मन के सारे कर्म धुलकर साफ हो जाते हैं। ऐसे पवित्र-हृदय मनुष्य आत्मलीन होकर शाश्वत शांति पाते हैं।

“जैसे आकाश में पक्षियों के तथा जल में जलजंतुओं के चरण-चिह्न नहीं दिखते, वैसे ज्ञानियों की गति का पता नहीं लगता। दूसरों को उलाहना देने तथा उनके दोषों की चर्चा करने से अपना प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। जो काम अच्छा, अनुकूल और हितकर है, वही करना चाहिए।” यथा—

*शकुनानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।*

*पदं यथा न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः*

*अलमन्यैरुपालम्भैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः।*

*पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः*

(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक - )।

## . आत्मा की नित्य सत्ता और वासना त्यागकर मोक्ष

युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! यह संसार कैसे तथा कहां से पैदा हुआ, प्राणियों की सृष्टि कैसे हुई तथा धर्म-अधर्म का विधान किसने किया?

भीष्म ने कहा—पुराना इतिहास है, जिसमें भरद्वाज ने प्रश्न किया है और भृगु ने उत्तर दिया है। कैलास पर्वत पर भृगु को बैठा देखकर भरद्वाज मुनि ने उनसे इस विषय में पूछा था।

. आत्मा की नित्य सत्ता और वासना त्यागकर मोक्ष

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जो सृष्टि की कल्पना है, जिसका विकास पुराणों में हुआ है सांख्य का सहारा लेकर उसी का यहां भावुकतापूर्ण वर्णन है। इसी क्रम में वनस्पतियों में चेतन जीव होने की उग्र कल्पना है जो अन्यत्र हिंदू शास्त्रों में दुर्लभ है। आगे प्राण-अपान आदि वायुओं का वर्णन है। इन विषयों को चार अध्यायों में कहा गया है।

उपर्युक्त चार अध्यायों के बाद एक सौ छियासी ( )वें छोटे अध्याय में भरद्वाज द्वारा जीव की सत्ता पर प्रश्न किया गया है। इसका उत्तर भृगु ने एक सौ सतासी ( )वें अध्याय में दिया है। भृगु ने कहा-अग्नि के बुझ जाने पर उसका नाश नहीं होता, अपितु वह आकाश में अव्यक्त रूप में स्थित रहती है। अग्नि ईंधन के आधार पर ही ग्रहण होती है। इसी प्रकार जीव शरीर छोड़कर चल देता है। उसका प्रत्यक्षीकरण मन, इंद्रिय तथा शरीर द्वारा ही संभव है। शरीर में रहकर अंतरात्मा ही शरीर का वहन करता है। आत्मा ही जड़ दृश्यों का द्रष्टा है और सुख-दुख का अनुभविता है। आत्मा जब शरीर त्याग देता है तब वह अपने कर्मों के अनुसार अन्य देह धारणकर दुख-सुख भोगता है।

“आत्मा प्राकृतिक गुणों से जुड़कर क्षेत्रज्ञ कहलाता है, और जब उनसे मुक्त हो जाता है तब वही परमात्मा कहलाता है।” तुम क्षेत्रज्ञ को आत्मा ही समझो। आत्मा सर्वलोकहितकारी है। इस शरीर में रहकर भी वह इससे वैसे निर्लिप्त है जैसे कमल-पत्र पर पड़ी जल-बूंद उससे निर्लिप्त रहती है। देह के नाश से जीव का नाश नहीं होता। देह का नाश भी तत्त्वों का अलग-अलग हो जाना है। आत्मा प्राणियों की हृदय-गुहा में स्थित है। उसका साक्षात्कार आत्मतत्त्वदर्शी करते हैं।

“जो विवेकवान स्वल्पाहार करके रात के पहले और पिछले पहर में सतत समाधि-अभ्यास करता है, वह अपने शुद्ध अंतःकरण द्वारा आत्मा द्वारा आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। चित्त शुद्ध होने पर वह शुभाशुभ कर्मों को त्यागकर प्रसन्न चित्त हो आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है और अनंत सुख का अनुभव करने लगता है।” यथा-

तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः।  
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि  
चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम्।  
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते , -

. आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतेर्गुणैः।

तैरेव तु विनिमुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ,

## मीमांसा

सब समय लोगों की जिज्ञासा रही कि यह संसार कहां से बना, किसने बनाया? इसके उत्तर में वेदों से लेकर पीछे के शास्त्रों तथा पुराणों में लेखकों ने अपनी-अपनी समझ और कल्पना के अनुसार उसका उत्तर दिया है। वस्तुतः जड़-चेतन दोनों सर्वथा भिन्न सत्ताएं हैं और इनमें अपने स्वतः निहित गुण-धर्म हैं, जिनसे जगत अनादि से स्वतः प्रवहमान है। इसका आरंभ और अंत कहना कल्पना मात्र है। आत्मा साक्षी है और चित्त सहित जड़-दृश्य साक्ष्य है। साक्ष्य को छोड़कर साक्षी आत्मा स्वयं स्वरूप में स्थिर होकर कृतार्थ हो जाता है।

### . ब्रह्मा से उत्पन्न होने से मूलतः सब मनुष्य ब्राह्मण हैं, अंततः और शुद्धतः आत्मलीन ब्राह्मण है

भृगु ने कहा-ब्रह्मा ने पहले मरीचि आदि प्रजापतियों को पैदा किया। उसके बाद सत्य, धर्म, तप, वेद, आचार और नियम बनाये। इसके बाद देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, असुर, सर्प, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मनुष्यों को उत्पन्न किया। इसके बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, इन चारों वर्णों की रचना की। ब्राह्मणों का रंग श्वेत, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला तथा शूद्रों का काला बनाया।

भरद्वाज ने मानो कबीरी भाषा में पूछा-यदि एक वर्ण से दूसरे वर्ण के लोगों में रंगभेद है, तब तो चारों वर्णों की वर्णसंकरता ही दिखायी देती है; क्योंकि सभी वर्णों में सभी रंग के लोग हैं। सभी वर्णों में गोरे-काले हैं। इसके साथ तथाकथित सभी वर्णों के लोगों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, चिंता, क्षुधा और थकावट प्रभाव डालते हैं। इतना ही नहीं, सभी मनुष्यों के शरीरों से पसीना, मल, मूत्र, कफ, पित्त और रक्त निकलते हैं। अन्य प्राणी एवं जानवर विविध रंग के हैं, फिर उनके वर्ण का निर्धारण कैसे होगा?

भृगु मुनि ने उक्त तर्कपूर्ण प्रश्न से प्रभावित होकर पैतरा बदल दिया, और कहा-वस्तुतः पहले वर्णों में कोई अंतर नहीं था। ब्रह्मा जी से उत्पन्न होने के कारण सभी मनुष्य ब्राह्मण थे। पीछे विभिन्न कर्मों के कारण उनमें वर्णभेद हो गया। अपने ब्राह्मणोचित धर्म का त्याग करके जो भोगों के मोही, कटु, क्रोधी तथा साहसी हो गये, उनके रंग लाल हो गये। ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाने लगे। जिन्होंने खेती, गौपालन तथा व्यवसाय में मन लगाया, वे ब्राह्मण पीले हो गये।

. ब्रह्म से उत्पन्न होने से मूलतः सब मनुष्य ब्राह्मण हैं

ऐसे ब्राह्मण वैश्य कहलाये। और जो शौच-सदाचार छोड़कर हिंसा तथा असत्य के व्यसनी हो गये और निंदनीय कर्मों से अपनी जीविका चलाने लगे, वे ब्राह्मण काले हो गये और शूद्र कहलाये। अतएव इसी कारण वे सभी ब्राह्मण से अलग होकर दूसरे वर्ण के कहलाने लगे, परंतु उनके लिए नित्य धर्मानुष्ठान और यज्ञकर्म का कभी निषेध नहीं किया गया।

इस प्रकार चार वर्ण हुए, जिनके लिए ब्रह्मा जी ने 'ब्राह्मी सरस्वती' अर्थात् वेदवाणी प्रकट की, परंतु लोभ-मोह में पड़कर लोग अज्ञान दशा में चले गये और वे वेद पढ़ना छोड़ दिये। इसलिए वे वेदाध्ययन के अनधिकारी हो गये। जो ब्राह्मण वेद पढ़ते तथा उसके अनुसार सदाचार से रहते, वे अपनी दशा में बने रहे। जो लोग सबको ब्रह्म रूप नहीं समझते हैं, वे द्विज कहलाने के अधिकारी नहीं हैं- "ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानंति तेऽद्विजाः ( , )।"

जो उत्तम संस्कारों से युक्त, वेदाध्ययनलीन, अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह युक्त, सदाचार पालक तथा गुरुसेवी हैं, वे ब्राह्मण हैं। सत्य, दान, अद्रोह, कोमलता, लज्जा, दया तथा तप सदगुण जिनमें हैं, वे ब्राह्मण हैं। जो राष्ट्र रक्षा, वेदाध्ययन तथा दानशील हैं और प्रजा से कर लेकर उसकी रक्षा करते हैं, वे क्षत्रिय हैं। जो वेदाध्ययन, कृषि, गोपालन तथा व्यवसाय करते और पवित्र आचरण से रहते हैं, वे वैश्य हैं। किंतु जो वेदाध्ययन तथा सदाचार छोड़ दिये, अपवित्र रहते हैं, कुछ भी खा लेते और कैसा भी भला-बुरा काम कर लेते हैं वे शूद्र कहे जाते हैं।

"यदि सत्य, दान, अद्रोह, कोमलता, लज्जा, दया तथा तप शूद्र में दिखायी दें और ब्राह्मण में न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है- "न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ( , )" अर्थात् उक्त सातों गुण जिसमें हो वह ब्राह्मण है और वे जिनमें न हो वे शूद्र हैं।

सब प्रकार से अपने को क्रोध-लोभ आदि दुर्गुणों से बचाना चाहिए। यही सर्वोच्च ज्ञान तथा यही आत्मसंयम है। क्रोध और लोभ कल्याण में बाधक हैं, अतएव पूरे बल से इनका निवारण करना चाहिए। क्रोध त्यागकर श्री की रक्षा करे, ईर्ष्या त्यागकर तप (साधना) की रक्षा करे, अभिमान त्यागकर विद्या एवं ज्ञान की रक्षा करे और प्रमाद त्यागकर अपने आप की रक्षा करे। जो निष्काम रहकर कर्म करता है और मोह-मान्यताओं के बंधन से मुक्त है तथा जिसने अपना सब कुछ त्याग की आग में होम दिया है, वही त्यागी है, वही बुद्धिमान है। किसी प्राणी की हिंसा न करे, सबके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करे, स्त्री-पुत्रादि की ममता-आसक्ति को त्यागकर विवेक से मन-इंद्रियों को वश में करे

और उस दिव्य स्थिति को प्राप्त करे जो अनंतकाल के लिए शोक-रहित निर्भय है।

नित्य तप करे, मननशील होकर मन-इंद्रियों का संयम करे, मोहास्पद देह-गेह में आसक्ति न करे और अजित को जीतने की इच्छा रखे- “अजितं जेतुकामेन ( , )।” मन और इंद्रियां साधारण लोगों के लिए अजेय कही गयी हैं। उन्हें जीतने की इच्छा रखना चाहिए और जीतना चाहिए।

जो इंद्रियों से ग्रहण होता है वह व्यक्त है, वह नाम-रूपात्मक जड़ कार्य-पदार्थ है। जो मन-इंद्रियों से न जाना जाय वह अव्यक्त है। वह सूक्ष्म प्रकृति है। अविश्वसनीय मार्ग पर न चले। विश्वसनीय में मन लगावे। ब्रह्म एवं आत्मा ही विश्वसनीय है उसी में मन लगावे। “सब तरफ से विरक्त हो जाने पर ही निर्वाण प्राप्त होता है। निर्वाण-प्राप्त व्यक्ति अनात्म वस्तु का चिंतन नहीं करता। संसार से वैराग्य हो जाने पर ज्ञानी सुखस्वरूप ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। सदैव अंतर-बाहर पवित्र रहकर सदाचार का पालन करे और सभी जीवों पर दयावान रहे, यही ब्राह्मण का लक्षण है।” यथा-

*निर्वेदादेव निर्वाणं न च किंचिद् विचिन्तयेत्।*

*सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्म निर्वेदिनाधिगच्छति*

*शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।*

*सानुक्रोशश्च भूतेषु तद् द्विजातिषु लक्षणम्*

(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक - )।

## मीमांसा

सृष्टि सदैव से है। किसी ब्रह्मा ने सृष्टि नहीं रची है। मूलतः मनुष्य समान हैं। वे अपने ऊंच-नीच कर्मों से ऊंच-नीच होते हैं। अंततः भृगुजी का उत्तर सही है-पवित्र आचार-विचार युक्त आत्मलीन व्यक्ति ही ब्राह्मण है।

## . सत्य की प्रतिष्ठा और सुख-दुख की व्याख्या

भृगु ने कहा-भरद्वाज मुनि! सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही प्रजा का प्रजनन करता है, सत्य के आधार पर संसार गतिशील है और सत्य के ही आचरण से मनुष्य स्वर्ग-लाभ करता है। इसके विपरीत असत्य अंधकार रूप है। वह पतन का कारण है। अज्ञान-अंधकार से आवृत्त मनुष्य सत्य ज्ञान को नहीं समझ पाता है। स्वर्ग प्रकाशस्वरूप तथा नरक अंधकारस्वरूप है।

. सत्य की प्रतिष्ठा और सुख-दुख की व्याख्या

मनुष्य के जीवन में ज्ञान-अज्ञान दोनों के बीज हैं। सत्य और असत्य ही धर्म और अधर्म, प्रकाश और अंधकार तथा सुख और दुख हैं। सत्य ही धर्म है, धर्म ही प्रकाश है, प्रकाश ही सुख है। असत्य ही अधर्म है, अधर्म ही अंधकार है और अंधकार ही दुख है।

संसार की सृष्टि मानसिक और शारीरिक दुखों से भरी है। इसमें जो सुख है वह भी अंत में दुख उत्पन्न करता है। जो इस तथ्य को समझता है वह मोह में नहीं पड़ता। इसलिए विवेकवान सदैव दुख से छूटने के लिए प्रयत्न करे। लोक-परलोक के सारे सुख नाशवान हैं। जैसे ग्रहण-काल में चंद्रमा की चांदनी नहीं रहती, वैसे अज्ञान से पीड़ित मनुष्य सुख नहीं पाता।

शारीरिक तथा मानसिक दो सुख हैं। अर्थ, धर्म तथा काम सुख के लिए ही हैं। सारा परिश्रम सुख के लिए होता है। भरद्वाज ने कहा-आपकी बातें मुझे जंच नहीं रही हैं। विवेकवान विषय-सुख से अलग रहकर आत्मशांति में जीवन व्यतीत करते हैं। सुना जाता है कि ब्रह्मा जी भी सृष्टि कर देने के बाद अकेला ही रहते हैं। वे काम-मोह में नहीं पड़ते, अपितु ब्रह्मचर्य से रहते हैं। उमापति महादेव ने भी काम को भस्म कर दिया और वे विरक्त रहते हैं।

भृगु ने कहा-असत्य से अज्ञान पैदा होता है। तमोग्रस्त मनुष्य अधर्म के साथ चलते हैं। जो लोग क्रोध, लोभ, हिंसा और असत्य में डूबे हैं, वे लोक-परलोक सब जगह दुखी रहते हैं। रोग-व्याधि, भूख-प्यास, थकावट, आंधी-पानी, सरदी-गरमी से उत्पन्न कष्ट, परिवार-वियोग, बुढ़ापा और मृत्यु आदि दुखों से प्राणी संतप्त रहते हैं।

उपर्युक्त शारीरिक-मानसिक दुखों के संबंध से जो रहित है वही सच्चा सुखी है। स्वर्ग में उक्त दुख नहीं है। वहां आनंदप्रद हवा चलती है। मनोनुकूल सुगंध फैली रहती है। भूख-प्यास, परिश्रम तथा बुढ़ापा का दुख वहां नहीं है। स्वर्ग में केवल सुख है, मृत्युलोक में सुख-दुख दोनों हैं और नरक में केवल दुख ही-दुख है। सच्चा सुख तो उस परम पद में है-“सुखं तत्परमं पदम् ( , )।” पृथ्वी संपूर्ण भूतों की जननी है। संसार की स्त्रियां भी संतान की जननी हैं। पुरुष प्रजापति है जो गर्भाधान करता है। पहले ब्रह्मा ने स्त्री-पुरुष की सृष्टि की। संसार के सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों के फल में सुख-दुख भोगते हैं ( अध्याय )।

## मीमांसा

इस एक सौ नब्बे ( )वें अध्याय में सत्य की अच्छी प्रतिष्ठा प्रतिपादित की गयी है। आगे चलकर स्वर्ग की स्थूल कल्पना कर ली गयी है जहां हवा,

गंध आदि सुंदर हैं; बुढ़ापा, थकावट आदि का दुख नहीं है। अंततः परमपद स्वरूपस्थिति में सच्चा सुख बताया गया है। इस प्रकार उलझी हुई बातें रखी गयी हैं। एक सौ नब्बे ( )वें से एक सौ बानबे ( )वें-तीन अध्यायों में श्लोकों के साथ गद्य में भी बातें कही गयी हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं-“विचित्र है कि इस अध्याय में दुख और सुख का विवेचन गद्य में दिया गया है। लगता है संसार में शारीरिक और मानसिक दुखों की स्पष्ट व्याख्या का गद्यांश-भाग जैसे बौद्ध-स्रोत से लिया गया था। अंत में सुख-दुख के सिद्धांत को स्वर्ग और नरक के साथ मिलाया गया है। स्वर्ग में सुख और नरक में दुख है। इस निष्कर्ष को ब्राह्मण और बौद्ध दोनों मानते थे। सुख-दुख का समत्व परम पद या मोक्ष है।”

### . हिमालय के आसपास उत्तम देश

एक सौ एकानबे ( )वें अध्याय में ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रम के कर्तव्य बताये गये हैं। गद्य का प्रयोग इसमें भी है। कहा गया है कि जिस गृहस्थ के दरवाजे से कोई अतिथि भिक्षा न पाने के कारण लौट जाता है, तो वह अपना पाप उसे दे जाता है और उसका पुण्य ले जाता है। इसका तात्पर्य है कि गृहस्थ अतिथि का सत्कार अवश्य करे। प्रेम भरी वाणी बोले जो सुनने वालों को सुखद लगे। पीड़ा देना, मारना और कटु वचन कहना महापाप एवं निंदित कर्म हैं। किसी का अनादर करना, अहंकार प्रदर्शित करना, ढोंग करना निंदित कर्म हैं। किसी को दुख न देना, सत्य बोलना और मन को क्रोध-रहित रखना सच्चा तप है।

एक सौ बानबे ( )वें अध्याय में वानप्रस्थ तथा संन्यास धर्म का वर्णन किया गया है और शुरू में गद्य अंश दिया गया है। इस अध्याय के उत्तर पक्ष में बताया गया है कि हिमालय के उत्तर में सर्वगुण संपन्न, कमनीय और पुण्यमय प्रदेश है। वहां के मनुष्य पापकर्म से रहित, पवित्र, अत्यंत निर्मल, लोभ-मोह से शून्य और सभी प्रकार के उपद्रव से रहित होते हैं। वह देश स्वर्ग-तुल्य है। वहां केवल शुभ गुण हैं। वहां रोग-व्याधि नहीं है और मनुष्यों की पूरी आयु के बाद मृत्यु होती है। वहां व्यभिचार नहीं है, धन के लिए दूसरों को सताना नहीं है। वहां के लोग किसी को विवश नहीं करते। वे कभी विस्मय में नहीं पड़ते। अधर्म का तो वहां नाम भी नहीं है। वहां किसी के मन में कभी संदेह नहीं पैदा होता है।

. गृहस्थ-सदाचार, पाप छिपाना पतन का रास्ता है

वहां कर्मों का फल प्रत्यक्ष मिलता है। वहां कुछ लोग बड़े-बड़े भवनों में रहते हैं, अच्छे-अच्छे आसनों पर बैठते तथा उत्तम भोजन करते हैं। उनकी इच्छाएं पूर्ण रहती हैं और उत्तम आभूषणों से सज्जित रहते हैं। परंतु कुछ लोगों को केवल जीवित रहने के लिए भोजन मिलता है। कुछ लोग बहुत मेहनत करके पेट पालते हैं।

पृथ्वी का उत्तर भाग बहुत पवित्र है। इस लोक के पुण्यात्मा लोग आगे उसी भूभाग में जन्म लेते हैं। बुरे कर्म करने वाले उत्तर दिशा के उत्तम देश में नहीं जा सकते (अध्याय - )।

### मीमांसा

महाकाव्यों और पुराणों में हिमालय के आस-पास तथा उत्तर दिशा के प्रदेशों का महत्त्वपूर्ण वर्णन आता है। यहां तक कि उसे स्वर्ग लोक तक कहा जाता है। भारत के लोग पुण्यकर्म करके वहां जन्म लेने की कामना करते थे। हो सकता है वहां पुराकाल में विशेष अच्छाई रही हो।

### . गृहस्थ-सदाचार, पाप छिपाना पतन का रास्ता है

भीष्म ने कहा-सड़क पर, गायों के बीच और अन्न में टट्टी-पेशाब न करे। शौच के बाद ठीक से हाथ-पैर धोकर कुल्ला करे, फिर स्नान, उसके बाद अपनी समझ के अनुसार उपासना करे। नित्य सूर्य उगने के पहले शय्या छोड़ दे। प्रातः-सायं उपासना करे। हाथ, पैर तथा मुख धोकर भोजन करे। भोजन के समय मौन रहे। परोसे हुए भोजन की निंदा न करे, स्वादिष्ट हो या रूखा, प्रेम से भोजन करे। भोजन के बाद हाथ-मुंह धोवे। रात में भीगे पैर न सोवे। यज्ञ-शाला, कोई पवित्र स्थान, बैल, देवालय, चौराहा, पवित्र मनुष्य, धर्मात्मा तथा चैत्य का सम्मान करते हुए रास्ता चले। अतिथियों, नौकरों तथा परिवार के लोगों के लिए एक ही प्रकार का भोजन बनवाना चाहिए।

सुबह तथा शाम दो ही समय भोजन करे। गृहस्थ नर-नारी अपने में ही सीमित रहें, पर-स्त्री तथा पर-पुरुष से स्नेह न हो (विरक्त तो सबसे विरक्त रहते ही हैं)। मिट्टी कुरेदना, तृण तोड़ना, दांतों से नख काटना, जूटे हाथ-मुंह रहना और पराधीन जीवन बिताना अपनी आयु को घटाना है। मांस न खाय, वह चाहे यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा संस्कारित हो और चाहे श्राद्ध के नाम पर हो। चाहे

स्वदेश में रहे या परदेश में, अपने पास में आये हुए अतिथि को भूखा न रहने दे। गुरुजनों को अपनी सेवा समर्पित करे। गुरुजनों के आने पर उनका प्रणाम करे, उनको बैठने के लिए आसन दे और उनका सत्कार करे। नंगी परायी स्त्री को न देखे।

तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ तीर्थ शुद्ध हृदय है और पवित्र वस्तुओं में सर्वोच्च पवित्र विशुद्ध हृदय है- “तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचानां हृदयं शुचिः ( , )।” परस्पर मिलने पर अभिवादन करना और कुशल-मंगल पूछना चाहिए। अतिथि को आदर से भोजन करावे। सूर्य की ओर मुंह करके पेशाब न करे। स्त्री के साथ एक शय्या पर न सोवे तथा एक थाली में भोजन न करे। बड़ों को ‘तू’ कहकर न पुकारे।

पापियों के हृदय और उनके नेत्र-मुख आदि के विकार ही उनके पापों को बता देते हैं। जो पाप करके उसे महापुरुषों से छिपाते हैं, वे गिर जाते हैं। अपने किये हुए पाप-कर्म को छिपाना महा मूर्खता है। किसी के किये हुए पाप को अन्य मनुष्य नहीं देखते हैं, किंतु देवता तो देखते हैं (कर्ता का मन ही वह देवता है)। पापी जब अपने पाप को छिपाता है, तब वह पुनः पाप करता है। यदि धर्मात्मा अपना धर्म गुप्त रखता है, तो वह धर्म में अधिक प्रवृत्त होता है। पापी अपने पाप को झुठलाता है, परंतु पाप पापी का पीछा नहीं छोड़ता।

किसी विशेष सुख की आशा रखकर जो धन का संग्रह किया जाता है, अंततः उसका उपभोग दुखपूर्वक ही होता है। अतएव विवेकवान उसकी प्रशंसा नहीं करते। मृत्यु यह नहीं देखती कि किसकी कामना पूरी हो गयी। वह समय आने पर प्राणी को उठा लेती है। सभी प्राणियों की हितकामना करना परम धर्म है। केवल प्राकृतिक नियमों का आधार लेकर अकेला ही धर्म का आचरण करना चाहिए। उसमें अन्य सहायक नहीं होता। कोई दूसरा सहायक उसमें क्या सहायता करेगा? धर्म ही मनुष्य का केंद्र है। वही स्वर्ग में देवों का अमृत है। धर्मात्मा धर्म के ही बल पर आज और आगे सुख भोगते हैं (अध्याय )।

## मीमांसा

ऊपर गृहस्थों के लिए सदाचार बताया गया है, जिसमें अन्य के लिए भी ग्रहण करने योग्य बातें हैं। अच्छे मनुष्य ही देवता हैं और उनका समाज स्वर्ग है, अथवा पवित्र हृदय स्वर्ग है और आत्मा देवता है।

## . अध्यात्मज्ञान का स्वरूप

युधिष्ठिर ने अध्यात्मज्ञान की बात पूछी। भीष्म ने कहा-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पांच महाभूत (तत्त्व) सभी प्राणियों के जन्म और मरण के स्थान हैं। जैसे लहरें समुद्र से प्रकट होकर उसी में लीन हो जाती हैं, वैसे समस्त निर्मित पदार्थ पांचों भूतों से प्रकट होकर पुनः उन्हीं में लीन हो जाते हैं। समस्त निर्मित पदार्थों में जड़-तत्त्वों के अंश कम-अधिक होते हैं, इसी से विविध ढंग से पदार्थ निर्मित होते हैं। इसे साधारण लोग नहीं समझते हैं।

शब्द गुण, श्रोत्र-इंद्रिय और शरीर के सारे छिद्र आकाश के कार्य हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा-इंद्रिय वायु के कार्य हैं। रूप, नेत्र और परिपाक अग्नि के कार्य हैं। रस, जिह्वा तथा गीलापन जल के कार्य हैं। गंध, नाक और शरीर पृथ्वी के कार्य हैं। इस प्रकार इस शरीर में पांच महाभूत (तत्त्व), छटां मन, सातवीं बुद्धि और आठवां क्षेत्रज्ञ-इस शरीर रूपी क्षेत्र को जानने वाला आत्मा है। इंद्रिय, मन और बुद्धि से जीवात्मा विषयों को जानता और उनमें सुख-दुख की मान्यता करता है। इंद्रियों से विषयों का ग्रहण होता है, मन से संकल्प-विकल्प होते हैं, बुद्धि से निश्चय किया जाता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) इन सबसे काम लेता है और सबका साक्षी रहता है। एड़ी से चोटी तक शरीर को देखने तथा जानने वाला चेतन उसका साक्षी है। इसे अच्छी तरह समझो।

सभी मनुष्यों को अपनी इंद्रियों तथा मन-बुद्धि को समझकर उनका ठीक ज्ञान रखना चाहिए। सत, रज और तम गुण इन्हीं का आधार लेकर रहते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से जीवों के जन्म-मरण का भेद जानकर धीरे-धीरे उस पर विचार करता है और भौतिक धरातल से उठकर उत्तम शांति पाता है-  
“समवेक्ष्य शनैश्चैव लभते शममुत्तमम् ( , )।”

रज-तम आदि गुण बुद्धि को बारंबार विषयों में ले जाते हैं। बुद्धि के साथ मन और इंद्रियों तथा उनकी वृत्तियों को भी विषयों में ले जाते हैं। साक्षी चेतन बुद्धि के द्वारा ही नेत्र से देखता है, कान से सुनता है, नाक से सूंघता है, जिह्वा से रस चखता है तथा त्वचा से छूता है। बुद्धि जिस विषय को ग्रहण करती है, मन उसका रूप धारणकर लेता है। बुद्धि के पांच अधिष्ठान ये पांच ज्ञानेंद्रियां-आंख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा हैं और अदृश्य जीवात्मा इन सबका अधिष्ठाता है। साक्षी आत्मा के आधार में रहकर बुद्धि सुख-दुख और मोह इन तीन भावों में स्थित होती है। बुद्धि कभी प्रसन्नता का अनुभव करती है और कभी शोक में डूबी रहती है और कभी मोह से ढकी रहती है।

यह भावात्मिका बुद्धि जब समाधि में जाती है, तब सुख-दुख और मोह से पार होकर शांत हो जाती है। बुद्धि तीनों गुणों से ऊपर उठकर भी भावात्मक मन में सूक्ष्म रूप में स्थित रहती है। समाधि से उत्थान होने पर प्रवृत्ति-स्वभाव रजोगुण बुद्धिभाव का अनुसरण करता है। उस समय रजोगुण से जुड़ी बुद्धि इंद्रियों को प्रवृत्ति में लगा देती है। इसके बाद विषयों के संबंध से प्रीति रूप सत गुण उत्पन्न होता है। इसके बाद चेतन जीव के विषयों में आसक्त होने से तमोगुण उत्पन्न होता है।

प्रसन्नता सतोगुण का कार्य है, शोक रजोगुण का तथा मोह-मूढ़ता तमोगुण का कार्य है। संसार के सारे भाव इन्हीं तीनों के भीतर आ जाते हैं। बुद्धिमान को चाहिए कि वह अपनी सभी इंद्रियों को अपने वश में रखे। सभी प्राणियों में ये तीनों गुण रहते हैं। इसी कारण सभी प्राणियों को सात्विकी, राजसी और तामसी अनुभूतियां होती हैं। सतोगुण सुख का अनुभव कराता है, रजोगुण दुख का अनुभव कराता है। जब तमोगुण का उदय होता है, तब मनुष्य जड़मूढ़ हो जाता है। जब शरीर या मन में किसी प्रकार प्रसन्नता का भाव उदय हो, तब सतोगुण का उदय समझना चाहिए। जब मन में दुख उदय हुआ हो, तब रजोगुण का प्रभाव समझना चाहिए। दुख पाकर चिंता न करे; क्योंकि चिंता से दुख बढ़ता है। हर्ष, प्रेम, सुख, शांति सतोगुण के लक्षण हैं। असंतोष, शोक, संताप, लोभ और असहनशीलता रजोगुण के लक्षण हैं। अपमान-बोध, मोह, प्रमाद, स्वप्न, निद्रा, आलस्य तमोगुण के लक्षण हैं।

यह दूर तक भागने वाला तथा विषयों की कामना में उलझा रहने वाला मन जब पूरी तरह वश में हो जाता है, तब मनुष्य इस जीवन में और शरीर छोड़ने के बाद भी सुखी रहता है। बुद्धि और चेतन आत्मा दोनों सूक्ष्म हैं और दोनों में बहुत अंतर है। इसे अच्छी तरह समझो। बुद्धि तीनों गुणों का जाल बुनने वाली है और चेतन आत्मा गुणों के जाल से सर्वथा अलग है। बुद्धि और चेतन आत्मा स्वभाव से ही सर्वथा भिन्न हैं, किंतु देहोपाधि में ये दोनों उसी प्रकार मिले रहते हैं जिस प्रकार मछली और जल। सत, रज तथा तम गुण जड़ हैं, इसलिए वे चेतन आत्मा को नहीं जानते, किंतु आत्मा चेतन होने से गुणों को जानता है और उनका साक्षी रहता है। आत्मा गुणों से सर्वथा भिन्न है, अपने स्वरूप के अज्ञान से वह अपने को तीनों गुणों से जुड़ा हुआ मानता है।

जैसे छेदों वाली टोकरी में रखा दीपक छेदों के द्वारा अपना प्रकाश फैलाकर वस्तुओं का ज्ञान कराता है, वैसे शरीर के भीतर बैठा परमात्मा चेष्टा और ज्ञान से शून्य आंख, नाक, कान, जीभ, चाम, मन और बुद्धि, इन सातों द्वारा सारे

विषयों का ज्ञान कराता है। बुद्धि गुणों का जाल बुनती है और क्षेत्रज्ञ आत्मा साक्षी बनकर केवल देखता रहता है। बुद्धि और आत्मा का संबंध अनादि है। बुद्धि का साक्षी क्षेत्रज्ञ आत्मा ही है और उससे सर्वथा पृथक है। जब जीव बुद्धि रूपी सारथि और मन रूपी लगाम द्वारा इंद्रिय रूपी घोड़ों को पूर्णतया अपने वश में कर लेता है, तब टोकरी से ढके हुए दीपक के समान अपने भीतर ही उसकी अंतर्ज्योति प्रकाशित हो जाती है। जब सांसारिक कर्मों को त्यागकर सदैव अपने आप में ही लीन रहता है, तब मननशील साधक सभी प्राणियों का आत्मा एवं प्यारा होकर परम गति को प्राप्त हो जाता है। जैसे जलचर पक्षी जल में लिप्त नहीं होता, वैसे पवित्र प्रज्ञा संपन्न साधक निर्लिप्त रहकर मनुष्यों में विचरता है। आत्मा निर्लिप्त तथा शुद्ध-बुद्ध स्वरूप है, ऐसा अपने विवेक से निश्चय करके साधक हर्ष, शोक और ईर्ष्या से रहित होकर सर्वत्र समता का बरताव करते हुए विचरण करे।

आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर मोह-स्वभाव-वश गुणों का जाल वैसे रचता है जैसे मकड़ी जाला रचती है; परंतु जब साधक को आत्म-साक्षात्कार हो जाता है तब तीनों गुणों का जाल नष्ट हो जाता है, तो भी उसकी सर्वथा निवृत्ति नहीं होती है; क्योंकि उसकी निवृत्ति प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती है। परोक्ष पदार्थ की सिद्धि अनुमान से होती है। एक वर्ग के ज्ञानियों का ऐसा ही निश्चय है। दूसरे ज्ञानी मानते हैं कि स्वरूपस्थिति होने पर तीनों गुणों की निवृत्ति हो जाती है। इन दोनों मतों पर ठीक से विचारकर अपनी बुद्धि के अनुसार वास्तविक तथ्य का निश्चय करना चाहिए। बुद्धि से कल्पित भेद हृदय की जटिल गांठ है। इसे खोलकर ज्ञानवान पुरुष संशयरहित होकर सुख से रहे, शोक न करे।

जैसे धूल-धूसरित शरीर वाला मनुष्य शुद्ध जल की नदी में नहाकर शुद्ध हो जाता है, वैसे मलिन मन वाला मनुष्य इस आत्मज्ञान की नदी में नहाकर निर्मल एवं ज्ञानसंपन्न हो जाता है। नदी के पार जाने की इच्छा वाला मनुष्य नदी तथा नाव को जान लेने मात्र से पार नहीं पहुंचता; आत्मज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान मात्र से संसार-सागर से पार हो जाता है। स्वरूपज्ञान स्वयं पुल स्वरूप है। ज्ञानी संतप्त नहीं होता। स्वरूपज्ञानी विवेक से आवागमन रूपी संसार का धीरे-धीरे विचार करके स्वरूप-साक्षात्कार कर लेता है और परम शांति प्राप्त कर लेता है। जो धर्म, अर्थ और काम को ठीक से समझकर और खूब सोच-विचारकर उनसे ऊपर उठ गया है और जो निरंतर आत्मानुसंधान में तत्पर होकर समाधिलीन है, वह अनात्म वस्तुओं के लिए उत्सुकता त्याग देता है। वही तत्त्वदर्शी है। जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है, वह विषयों में बहती हुई इंद्रियों वाला मनुष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता। यह समझकर मनुष्य आत्मसंयमी हो

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

जाता है। संयम के अलावा ज्ञानी का क्या लक्षण है? ज्ञानी आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जाता है।

जो संसार अज्ञानियों के लिए भय का स्थान है, उसी में आत्मज्ञानी निर्भय रहकर विचरता है। आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर सभी ज्ञानियों की एक-सी गति (मोक्ष) होती है। उसमें ऊंच-नीच का भेद नहीं होता। गुणों के संबंध में ही ऊंच-नीच दशा होती है। अर्थात् देहोपाधि में ही भौतिक स्थिति ऊंची-नीची होती है। स्वरूपस्थिति में सब ज्ञानियों की समान गहरी शांति रहती है। निष्काम-भाव से किया गया कर्म सभी कर्म-संस्कारों का नाश कर देता है। ऐसे ज्ञानी की पहले तथा आज के सारे कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं। काम-क्रोधादि में आतुर रहने वाले मनुष्यों को विचारवान धिक्कारते हैं। वासनातुर प्राणी नाना योनियों में भटकता है। भोगासक्ति के कारण चंचल रहने वाले लोग स्त्री-पुत्रादि के नाश होने पर शोक करते और फूट-फूटकर रोते हैं। तुम उनकी दुर्दशा को देख लो। इससे भिन्न उन्हें देख लो जो मोह-शोक से पार हो गये हैं। फिर तुम्हारा जो रास्ता पकड़ने का मन हो, वह पकड़ो (अध्याय )।

## मीमांसा

इस संदर्भ के आरंभ में बात आयी है कि शब्द आकाश का गुण है; क्योंकि पुरानी पंडित-परंपरा यही मानती चली आयी है। वस्तुतः आकाश शून्य है और शब्द गतिशील द्रव्य है। वह आकाश का नहीं, अपितु वायु का गुण है। वायु में स्पर्श है और स्पर्श में शब्द है।

इस संदर्भ ( , ) में देह में रहने वाले आत्मा को परमात्मा नाम से व्यक्त किया गया है। जैसे छेदवाली टोकरी से ढका दीपक छिद्रों द्वारा अपना प्रकाश बाहर फैलाता है, वैसे देह में बैठा परमात्मा अपना ज्ञान मन-इंद्रियों द्वारा बाहर फैलाता है। यह संदर्भ अध्यात्म ज्ञान का सार है। वस्तुतः सांख्य-चिंतन का यह प्रभाव है।

## . ध्यान-योग तथा उसका उत्तम फल

भीष्म ने कहा-युधिष्ठिर! अब मैं तुम्हें ध्यान-योग के विषय में बताऊंगा जिसके द्वारा महर्षिगण इसी जीवन में शाश्वत स्थिति पा जाते हैं। ज्ञानतृप्त योगी एवं महर्षिगण निर्वाण में मन लगाते हैं। वे कामादि दोषों से मुक्त होकर स्वस्वरूप में स्थित हो जाते हैं। वे संसार में पुनः नहीं आते। ध्यानयोग के

. आत्मलीनता के सामने सभी स्वर्ग नरकतुल्य हैं

साधक निर्द्वंद्व, नित्य सत्य में स्थित, सब वासनाओं से मुक्त तथा सदाचार में निरत रहते हैं। वे ध्यान विरोधी वस्तुओं को त्यागकर असंग हो जाते हैं, जिससे मन में शांति हो वे वह प्रयोग करते हैं। वे इंद्रियों को विषयों से समेटकर तथा मन को अंतर्मुख कर काठ की तरह बैठ जाते हैं और मन को आत्मा में लगाते हैं। ध्यान करने वाले शब्द न सुनें, स्पर्श न करें, रूप न देखें, रस न चखें तथा गंध न सूंघें। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पांचों विषय इंद्रियों को मथने वाले हैं; अतएव इनसे विरत हो जायं। इनकी मन से भी इच्छा न करें। इस प्रकार इंद्रियों को स्ववश करके मन आत्मा में लगावें।

मन नाना विषयों में विचरने वाले स्वभाव का है। उसका कोई स्थिर आधार नहीं है। पांचों ज्ञानेंद्रियां मन के भागने के द्वार हैं। मन स्वभाव से अत्यंत चंचल है। ऐसे मन को साधक ध्यान द्वारा एकाग्र करे। जो मन एकाग्र हो जाता है, वही मन समय पाकर वैसे चंचल हो जाता है जैसे बादल में बिजली चमकती है। जैसे पत्ते पर पड़ी हुई जल-बूंद हवा से हिलती रहती है, वैसे आरंभिक साधक का मन चंचल हो जाता है। एकाग्र करने पर कुछ समय तो मन स्थिर हो जाता है, परंतु समय से पुनः चंचल हो जाता है। साधक इसको लेकर दुखी न हो, अपितु आलस्य और मत्सरता त्यागकर बारंबार मन को एकाग्र करने का अभ्यास करता रहे।

प्रथम ध्यानार्थी को विचार, विवेक और वितर्क भी उत्पन्न होते हैं। ध्यान में चाहे जितनी कठिनाई आये, साधक को घबराना नहीं चाहिए अपितु अधिक तत्परता के साथ ध्यानाभ्यास करना चाहिए। साधक सदैव अपने कल्याण की ही बात सोचे। यह हड़बड़ी का विषय नहीं है। धैर्यपूर्वक अभ्यास में लगे रहने का विषय है। अभ्यास करते-करते मन देर तक शांत रहने लगता है। जब मन पूर्ण शांत हो जाता है, तथा उसे दिव्य सुख मिलता है। यह स्थिर सुख न कोई दुनियावी उपलब्धि दे सकती है और न कोई देवता दे सकता है। जब साधक ध्यान में प्रवीण हो जाता है, तब वह उसमें अधिक अनुरक्त हो जाता है। इस प्रकार योगी दुख और शोक से रहित निर्वाण पद को प्राप्त हो जाते हैं (अध्याय )।

## . आत्मलीनता के सामने सभी स्वर्ग नरकतुल्य हैं और संहिता-जापक कैवल्य पद पाता है

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! जापकों को क्या फल मिलता है? जप क्या सांख्ययोग, ध्यानयोग या क्रियायोग का अनुष्ठान है? अथवा यह जप भी कोई यज्ञ है।

भीष्म ने कहा-इसके लिए विद्वान लोग पुराना इतिहास बताते हैं जो भय, काल, मृत्यु तथा ब्राह्मण के बीच की घटना है। मोक्षदर्शी मुनियों ने सांख्य-योग का उपदेश दिया है। सांख्य में तो जप से कोई संबंध ही नहीं है। उपनिषदों का ज्ञान निवृत्ति, शांति और ब्रह्मलीनता का है। इसलिए इसमें भी जप की आवश्यकता नहीं है। समदर्शी मुनियों का मार्ग सांख्य-योग का है। उनमें से चित्त-शुद्धि के लिए कुछ लोग जप का प्रयोग करते हैं, शेष नहीं करते। सांख्य-योग में इंद्रिय-संयम और मनोनिग्रह आवश्यक माने गये हैं।

सत्य, अग्निहोत्र, एकांतवास, ध्यान, तपस्या, दम, क्षमा, अनसूया, अल्पाहार, विषयों का त्याग, वाक्य-संयम और शम, यह प्रवर्तक यज्ञ है। इससे हटकर निवर्तक यज्ञ है। उसके अनुसार जप करने वाले ब्रह्मचारी साधक के सारे कर्म छूट जाते हैं। साधक को चाहिए कि वह सभी साधनों को निष्काम भाव से करे और प्रवृत्ति से निवृत्ति की तरफ बढ़े। निवृत्ति मार्ग पर पहुंचने की विधि है कि जापक कुशासन पर बैठे, हाथ में कुश रखे, चोटी में भी कुश बांध ले, कुशों से घिरकर बैठे और कुशों से ढका रहे। विषयों को दूर से ही नमस्कार कर ले और कभी उनका चिंतन न करे। मन में समता रखे और मन को मन में ही शांत कर दे। संहिता (वेद-मंत्रों) का जप करते हुए ब्रह्म-भाव में तन्मय हो जाय। संहिता-जप से उसकी शक्ति पाकर साधक ध्यान को सिद्ध कर लेता है। वह शुद्ध चित्त होकर मन-इंद्रियों को जीत लेता है। वह द्वेष, कामना, आसक्ति तथा मोह से पार होकर निर्द्वंद्व हो जाता है। वह न कभी शोक करता है और न कहीं आसक्त होता है। वह न कर्मों का कारण बनता है और न कर्ता बनता है। अर्थात् निष्काम तथा अभिमान-शून्य होकर सब काम करता है। वह कोई काम अहंकारपूर्वक नहीं करता है। वह न स्वार्थी होता है, न किसी का अपमान करता है और न निकम्मा होकर बैठता है। वह सदैव ध्यान में तत्पर होकर सत्य तत्त्व का निश्चय कर लेता है। ध्यान द्वारा समाधिस्थ होकर वह क्रमशः ध्यान-क्रिया का भी त्याग कर देता है। वह सर्वत्याग के सुख परमानंद को प्राप्त हो जाता है। वह जीवनपर्यंत इच्छा से रहित रहकर अंततः स्वरूप में लीन हो जाता है। “आत्मस्वरूप का बोध हो जाने पर साधक रजोगुण से छूटकर शांतस्वरूप, निर्मल, अमृतस्वरूप विशुद्ध आत्मा में स्थित हो जाता है।”

यथा-

*आत्मबुद्ध्या समास्थाय शान्तिभूतो निरामयः ।*

*अमृतं विरजः शुद्धमात्मानं प्रतिपद्यते ,*

. आत्मलीनता के सामने सभी स्वर्ग नरकतुल्य हैं

## मीमांसा

पहले संहिता (वेद-मंत्रों) का पाठ होता था। वेद मंत्रों का मौन भाव से पाठ करने वाले को यहां जापक कहा गया है। यहां लेखक ने किस तरह कुशासन पर बैठना, हाथ में कुश लेना, चोटी में कुश बांधना तथा कुश से घिरे रहकर संहिता का जप करना बताकर जापक को सांख्य, योग और उपनिषदों के आत्मज्ञान और ध्यान से जोड़कर तथा उसे उनसे भी ऊपर उठाकर उसमें आत्मलीनता का चित्रण किया है, यह उसकी विशेषता है। इसका अर्थ निकलता है कि वेदपाठ की शुष्क क्रिया में न रुककर वेदपाठी को निर्विषय होकर आत्मज्ञानपूर्वक जीवन्मुक्ति की रहनी में रहना चाहिए।

आगे एक सौ सत्तानबे ( )वें अध्याय में यह बताया गया है कि जापक में दोष आने से वह नरक में जाता है। यदि जापक पूरे नियमों का पालन नहीं करता है, तो वह नरक में जाता है। बिना प्रेम के अवहेलनापूर्वक जप करने से, अभिमान करने से, दूसरों का अपमान करने से, कामना बद्ध होने से, ऋद्धि-सिद्धि पाने की इच्छा रखने से, विषयासक्त रहने से, मन के चंचल रहने से, विवेकशून्य होने से जापक नरक में जाता है। (अध्याय - )

## मीमांसा

यहां नरक में जाने का अर्थ है पुनर्जन्म को प्राप्त होना। अर्थात् वह निर्वाण को न प्राप्त होकर जन्म-जन्मांतरों में भटकता रहता है।

आगे एक सौ अष्टानबे ( )वें अध्याय में बताया गया है कि सुना जाता है कि देवताओं के लोक अनेक रूप-रंग और प्रकार के हैं। उनके फल भी अनेक प्रकार के हैं। स्वर्ग में दिव्य विमान होते हैं जिनमें चढ़कर इच्छानुसार विचरा जा सकता है। वहां दिव्य सभाएं हैं, नाना प्रकार के खेल की जगहें हैं और सोने-जैसे कमल-फूलों से भरे सरोवर हैं। वरुण, कुबेर, इंद्र और यमराज, इन लोकपालों; शुक्र, बृहस्पति, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्य, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु तथा अन्य देवताओं के लोक अद्भुत भोगों से भरे हैं। परंतु ये सब स्वर्ग लोक परमात्मस्वरूप की स्थिति के सामने नरक ही हैं—“एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ( , )।”

परमात्मा अर्थात् गुणातीत आत्मा की जो दिव्य स्थिति है, वह निर्भय, कारण-रहित, स्वतःस्वरूप; अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश इन पांच क्लेशों से रहित है। उसमें प्रिय-अप्रिय का द्वंद्व नहीं है; सत, रज, तम का विकार नहीं है; अष्टधा प्रकृति नहीं है तथा वहां ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

नहीं है। वहां दृष्टि, श्रुति, मति और विज्ञाति लक्षण नहीं हैं; प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द जो ज्ञान के कारण-भूत हैं, वे नहीं हैं। वहां विषयों का क्षणिक आनंद तथा उससे उत्पन्न हर्ष और उसके परिणामजनित शोक और थकावट नहीं हैं। काल का उस पर कोई प्रभाव नहीं है। वह तो काल से भी ऊपर है।

“आत्म-कैवल्य-स्थिति को प्राप्त हुआ ज्ञानी दिव्य स्थिति में विराजमान होता है। वह शोक से पार हो जाता है। यह स्वरूपस्थिति रूप परमधाम ऐसा ही है। और जो पहले नाना प्रकार के स्वर्ग लोक बताये हैं, वे इस आत्मकैवल्य स्थिति की तुलना में नरक हैं।” यथा-

*आत्मकैवलतां प्राप्तस्तत्र गत्वा न शोचति।*

*ईदृशं परमं स्थानं निरयास्ते च तादृशाः॥*

## मीमांसा

वैदिक साहित्य की परंपरा के शास्त्रों में संभवतः यह स्थल सबसे विलक्षण है जिसमें आत्मलीनता एवं कैवल्य रूप स्वरूपस्थिति के सामने सभी प्रकार के स्वर्गों को नरक बताया गया है। इस विषय में इतनी निर्भीकता और साहस के साथ कथन अन्यत्र दुर्लभ है। बात परम सत्य है। सारे मर्तों से गढ़े गये स्वर्ग स्त्री-पुरुषों के मलिन अंग-मिलन के घृणित तांडव हैं। विषयलंपट मनुष्यों की अपूर्ण कामनाओं की भड़ास सारे स्वर्ग हैं, जो घोर काल्पनिक हैं। महाकवि गालिब की बात इस स्थान पर याद आती है-

*जन्नत की हक्रीकत मालूम है हमें।*

*लेकिन मन को बहलाने को गलिब यह ख्याल अच्छा है*

कहते हैं कि हिमालय पर्वत के निकट किसी पर्वत पर एक महान यशस्वी ब्राह्मण रहता था जो छहों अंगों सहित वेदों का पारगत विद्वान था। वह शम-दम युक्त रहकर वेदों का जाप करता था। उस पर सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया; परंतु वह वेद-जाप में ही मस्त रहा। सरस्वती से कुछ नहीं बोला। जप समाप्त होने पर ब्राह्मण ने उठकर सरस्वती को प्रणाम किया। सरस्वती ने उससे प्रसन्न होकर इच्छित वर मांगने का आग्रह किया। ब्राह्मण ने कहा-“मेरा मन संहिता-जप में निरंतर लगा रहे और मन की एकाग्रता निरंतर बढ़ती रहे।” सरस्वती ने ‘एवमस्तु’ कहा और चली गयीं।

ब्राह्मण ने अपने मन और इंद्रियों को वश में कर लिया था। उसने क्रोध को जीत लिया था। वह अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहता था और किसी के दोष

. आत्मलीनता के सामने सभी स्वर्ग नरकतुल्य हैं

नहीं देखता था। धर्म ने आकर उसे दर्शन दिया और उसे स्वर्ग लोक में ले जाने के लिए आग्रह किया। शर्त थी कि देह छोड़कर स्वर्गलोक में जाना होता है। ब्राह्मण ने कहा—मुझे स्वर्ग से क्या लेना-देना है? आप अपने स्थान पधारिए। मैं शरीर त्यागकर स्वर्ग नहीं जाना चाहता। धर्म ने कहा—तुम्हारी अन्य इच्छा हो, तो उसे बताओ। ब्राह्मण ने कहा—मुझे शरीर छोड़कर स्वर्ग जाने की तनिक भी इच्छा नहीं है। मुझे तो संहिता-जप में ही महान आनंद है।

इसके बाद काल, मृत्यु और यम ब्राह्मण के पास आये और वे बोले कि ऐ ब्राह्मण! तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। अब हम सब तुम्हें स्वर्ग ले चलने के लिए आये हैं। इतने में तीर्थयात्रा करते हुए वहां राजा इक्ष्वाकु भी टपक पड़े। ब्राह्मण ने उनका आदर किया और कहा—राजन! मैं आपकी क्या सेवा करूं?

राजा इक्ष्वाकु ने कहा—मैं क्षत्रिय राजा हूं और आप ब्राह्मण तपस्वी हैं। आप जो रत्न-धन चाहें मांग लें। ब्राह्मण ने कहा—ब्राह्मण दो प्रकार के होते हैं, प्रवृत्ति-मार्गी और निवृत्ति-मार्गी। मैं निवृत्ति-मार्गी ब्राह्मण हूं। मैं किसी से कुछ नहीं ग्रहण करता। राजन! आप प्रवृत्ति-मार्गी ब्राह्मणों को दान दीजिए। मैं आपसे दान नहीं लूंगा। प्रत्युत आप बताइए कि मैं आपकी क्या सेवा करूं?

राजा इक्ष्वाकु ने कहा—मैं क्षत्रिय हूं। 'दीजिए' ऐसा कहकर मांगने की बात मैं नहीं जानता। मांगने के नाम पर हम लोग यही कहते हैं 'युद्ध दो'। ब्राह्मण ने कहा—बड़ी खुशी की बात। जैसे आप अपने धर्म में दृढ़ हैं, वैसे मैं अपने धर्म में दृढ़ हूं। अतएव आपको जो अच्छा लगे वह कीजिए।

राजा इक्ष्वाकु ने कहा—ब्रह्मण! आपने पहले मुझसे कहा था 'मैं अपनी शक्ति के अनुसार दान करूंगा।' तो मैं आपसे मांगता हूं कि आप अपने जप का फल मुझे दे दीजिए।

ब्राह्मण ने कहा—राजन! आपने कहा था कि मैं केवल युद्ध मांगता हूं, तब आप मुझसे युद्ध क्यों नहीं मांगते? राजा ने कहा—आपसे और मुझसे तो वाग्युद्ध चल ही रहा है। ब्राह्मण ने कहा—मेरी प्रतिज्ञा स्थिर है। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं? राजा ने कहा—आप अपने जप का पूरा फल मुझे दे दीजिए। ब्राह्मण ने कहा कि मैंने अपने जप का सारा फल आपको दे दिया।

राजा ने पूछा—वह फल क्या होगा? ब्राह्मण ने कहा—मैं नहीं जानता। आपने मेरे सारे जप का फल मांगा, तो मैंने दे दिया। धर्म, यम, मृत्यु और काल इसके साक्षी हैं।

राजा ने कहा—धर्म का अज्ञात फल मेरे किस काम होगा? अतएव यह फल

आपके ही पास रहे। मैं ऐसा फल नहीं चाहता जो संदेहास्पद हो।

ब्राह्मण ने कहा-मैं अपना संहिता-जप-फल आपको दे चुका हूँ। अब मैं उसे वापस नहीं लूंगा। मैंने जप करते समय फल की कोई कामना ही नहीं की थी, अतएव इस जप का फल क्या होगा-इसे मैं कैसे जान सकता हूँ? आपने कहा था 'दीजिए'; मैंने दे दिया। अब आप और मैं, दोनों सत्य पर दृढ़ रहें। जिस प्रकार सत्य जीव का उद्धार करता है उस प्रकार यज्ञ, वेदाध्ययन, दान तथा नियम भी नहीं तार सकते हैं। सारी तपस्याओं को लाख गुणा बढ़ा लिया जाय, तो भी वह सत्य के बराबर नहीं होगा। सत्य ही एकमात्र अविनाशी ब्रह्म है। सत्य ही तप है, यज्ञ है, वेद है। सत्य से संयम होता है। सत्य ही वेद-वेदांग है। सत्य ही विद्या तथा विधि है (अध्याय - )।

### मीमांसा

यह कहानी आगे लंबी चलती है और पौराणिक कल्पनाओं का घटाटोप आता है; परंतु कुल मिलाकर निष्कामता की ही पुष्टि की गयी है। लगता है कि वेदपाठियों में दो भाग हो गये थे। एक वे थे जो स्वर से वेद-पाठ करते थे। दूसरे मौन होकर उसका पाठ करते थे। उन्हें जापक कहा जाता है।

बहुत उपोद्घात के बाद यह बताया गया कि योगी और संहिताजापक, दोनों उस उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं जो कैवल्य है, अमृत है, अहंकार-शून्य तथा निर्द्वंद्व है। वह पुनरावृत्तिरहित, अविनाशी, दुःखशून्य, अजर-अमर तथा शांत स्वरूप है।

धर्म, यम, काल, मृत्यु कोई व्यक्ति नहीं हैं कि आकर किसी से मिलें। यह सब कल्पनाएं बात समझाने की विधि मात्र है।

### . आत्मज्ञान और आत्मस्थिति पर मनु के उपदेश

आगे दो सौ एक ( )वें अध्याय से दो सौ छह ( )वें अध्याय तक बृहस्पति के प्रश्न और मनु के उत्तर के रूप में आध्यात्मिक ज्ञान की बातें आती हैं। बृहस्पति पूछते हैं कि यह जगत कहां से उत्पन्न हुआ। इसके बाद वे पूछते हैं-आत्मज्ञान होने का फल क्या है? कर्म का फल क्या है? वासना-वशी जीव देह से किस प्रकार निकलता है, और दूसरी देह में कैसे प्रवेश करता है?

. आत्मज्ञान और आत्मस्थिति पर मनु के उपदेश

मनु उत्तर देते हैं कि प्रिय ही सुख है और अप्रिय दुख। हर मनुष्य सोचता है कि मुझे प्रिय प्राप्त हो, अप्रिय नहीं। इसी के लिए कर्मानुष्ठान है। जिस ज्ञानी को इष्ट-अनिष्ट तथा प्रिय और अप्रिय दोनों नहीं चाहिए, उसके लिए ज्ञानयोग का उपदेश है। वेदों के कर्मकांड सकाम हैं। जो कामनाओं से सर्वथा मुक्त होता है, वही मुक्ति का अनुभव करता है।

बृहस्पति ने कहा-सब जीवों को सुख प्रिय है, और दुख त्याज्य। सुख-प्राप्ति और दुख-निवारण के लिए कामना होती है। इसी से मनुष्य कर्म करता है। उन कर्मों से उनकी कामनाएं पूरी होती हैं। ऐसी स्थिति में आप कामनाओं को त्यागने की बात कैसे कहते हैं?

मनु ने कहा-मनुष्य भोगों के लिए कर्मों के जाल में फंसकर भवबंधन में पड़ता है। वेदों में स्वर्ग-प्राप्ति के लिए कर्मकांड बताया जाता है, वह कल्याणार्थियों के लिए जाल ही है। अतएव उतना ही कर्म ठीक है जिससे मुक्ति संपादित हो। केवल पवित्र कर्मों से मन शुद्ध होता है और शुद्ध मन में मोक्ष की इच्छा उत्पन्न होती है। मुमुक्षु कर्मकांड से रहित होकर भोगों से निष्काम हो जाता है। वही उच्चतम ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करता है। एक कर्म का फल क्षणिक भोग है, और दूसरे कर्म का फल शाश्वत शांति है। वासनात्मक कर्म बांधता है और निष्काम कर्म मोक्षदायी है।

मनुष्य सूर्य उगने पर जब चलता है, तब वह देखता है कि यह कांटा है, यह खाई है, अतएव उनसे बचकर चलता है, इसी प्रकार आत्मज्ञान का प्रकाश पाकर जो जीवन-यात्रा करता है वह मोह-रहित हो जाता है। उसे दिखता है कि यह बंधन है, इसलिए वह उससे हटकर चलता है। सारे कर्मकांड विषय-भोगों को प्राप्त करने के लिए हैं, परंतु विषय-भोगों का पाना सहज नहीं है। वे मिल भी जायं तो छूट जाते हैं। जीव कर्मों के जाल में पड़कर शुभाशुभ कर्मों के फल भोगता है। ज्ञानी पुरुष विषय-सुख की कामना त्यागकर आत्मा में ही विश्राम करता है जो अक्षय है, प्रकृति-पार है, अलिंग है और परम शांत स्वरूप है।

इसके बाद मनु ने सृष्टि-उत्पत्ति की बात कही है जो भावुकतापूर्ण तथा परंपरा प्राप्त कल्पना है। वे पुनः मोक्ष की बात करते हैं। वे कहते हैं कि आत्मा गरम, ठंड, कोमल, कठोर, खट्टा, कसैला, मीठा, तीता, पांच विषय आदि सांसारिक प्रपंच से सर्वथा रहित है। जैसे दीपक पूरे घर को प्रकाशित करता है, वैसे चेतन आत्मा पूरे शरीर को ज्ञानवान करता है। जैसे राजा की प्रेरणा द्वारा अनेक मंत्री अपने-अपने विभाग में काम करते हैं, वैसे आत्मा से प्रेरित होकर मन, बुद्धि तथा इंद्रियां शरीर में काम करती हैं। जैसे लकड़ी चीरने से न उसमें

आग निकलती है और न धुआं, परंतु विधि से उसे मथने पर उससे आग प्रकट हो जाती है, वैसे शरीर काटने तथा पेट फाड़ने पर उसमें आत्मा नहीं दिखता, किंतु विवेक से सहज समझा जा सकता है कि आत्मा देह से अलग है। हम अपने शरीर के कटे हुए अंग को अलग पड़ा हुआ देखते हैं, वैसे विवेकवान अपने माने हुए शरीर को हर समय अलग देखता है। आत्मा शरीर से भिन्न है। वह इसकी उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय तथा मृत्यु से लिपायमान नहीं होता, किंतु अपने कर्म-वासना-वश एक शरीर छोड़कर अन्य शरीर धारण करने के लिए गमन करता है।

चेतन आत्मा इंद्रियों से नहीं जाना जा सकता है, अपितु वही इंद्रिय-मन को जानता है। जैसे आग से लोहा गरम हो जाता है, किंतु लोहा आग नहीं है; वैसे चेतन आत्मा के संसर्ग से देह-इंद्रियां चेतनवत भासती हैं, परंतु वे चेतन नहीं हैं। वासना-वशी जीव बारंबार देह धरता और छोड़ता है तथा अपने कर्मों का फल भोगता है। जैसे तीव्रगामी यान पर चलते समय अगल-बगल की वस्तुएं पीछे भागती हुई दिखती हैं, वैसे सूक्ष्मतम शुद्ध आत्मा विवेक न होने पर विकारवान-सा प्रतीत होता है। जैसे चश्मे या सूक्ष्मदर्शक यंत्र से सूक्ष्म अक्षर या वस्तुएं बड़ी दिखती हैं, वैसे सूक्ष्म आत्मतत्त्व देहोपाधि से स्थूल शरीर रूप दिखता है। जैसे स्वच्छ दर्पण में चेहरा साफ दिखता है, वैसे शुद्ध बुद्धि से आत्मा का साक्षात्कार होता है।

मनु आगे कहते हैं कि जीव देह-इंद्रिय संबंध से विषयों को भोगता है। भोगों के छूट जाने पर उनकी याद करता है। इस प्रकार वह सब समय सबसे अलग और अकेला ही रहता है। इंद्रियों द्वारा आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। मन-इंद्रियों को शांत कर आत्मसाक्षात्कार होता है। आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। इसी से वह सबको जानता है।

हिमालय का दूसरा पार्श्व तथा चंद्रमा का पृष्ठभाग नहीं दिखते हैं, परंतु वे हैं; उसी प्रकार चेतन आत्मा आंख से न दिखने से उसका अभाव नहीं है। वही तो मैं हूँ। 'मैं हूँ' इस प्रकार सबको आत्मा का ज्ञान है, परंतु विवेक बिना उसका यथार्थ ज्ञान नहीं है। कहावत है कि सांप ही सांप के पद-चिह्न को जानता है, वैसे विवेक द्वारा ही आत्मा का अनुभव होता है। जन्म, वृद्धि तथा क्षय देह का होता है, आत्मा का नहीं।

जैसे हिलते हुए जल में चेहरा नहीं दिखता, अपितु स्वच्छ तथा स्थिर जल में दिखता है, वैसे मलिन तथा चंचल बुद्धि से आत्मसाक्षात्कार नहीं होता, अपितु शुद्ध तथा स्थिर चित्त से होता है। अविवेक से बुद्धि भ्रष्ट होती है, भ्रष्ट

. आत्मज्ञान और आत्मस्थिति पर मनु के उपदेश

बुद्धि से मन मोह में फंस जाता है। मन के दूषित होने से इंद्रियां अनियंत्रित हो जाती हैं। विषय-भोगों के अगाध सागर में डूबकर भी मन कभी तृप्त नहीं होगा। जीव विषय-वासना-वश ही जन्मांतरों में भटकता है। तृष्णा महा पाप है। इसके अंत होने पर ही शाश्वत शांति मिलती है। जिसका मन विषयों में डूबा है, वह परम आत्मतत्त्व में नहीं स्थित हो सकता। बहिर्मन दुखी होता है, अंतर्मुख मन सुखी होता है। इंद्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञान से उसका आश्रय आत्मा श्रेष्ठ है। अव्यक्त आत्मा से ही ज्ञान प्रसारित होता है और वह बुद्धि, मन तथा इंद्रियों में फैलता है। जो साधक स्थूल-सूक्ष्म समस्त जड़ दृश्य को मन से त्याग देता है, वह अमृतस्वरूप आत्मतत्त्व का अनुभव करता है। विषयों के त्याग से वे छूट जाते हैं, परंतु उनकी सूक्ष्म आसक्ति रह जाती है। जब आत्मसाक्षात्कार होता है, तब सूक्ष्म आसक्ति भी नष्ट हो जाती है। जब बुद्धि कर्मजनित गुणों से छूट जाती है, तब वह आत्मलीन हो जाती है। मन, बुद्धि, इंद्रियां आत्मा को नहीं जानतीं, किंतु आत्मा इन सबको जानता है।

मनु ने आगे कहा-बृहस्पते! जब शारीरिक या मानसिक कोई दुख आवे, तब उसका चिंतन करना छोड़ दे। दुखों से मुक्त होने के लिए यही सच्ची औषधि है। दुख वाली बात बराबर सोचते रहने से दुख बढ़ता है। मानसिक दुख को विवेक द्वारा तथा शारीरिक दुख को संयम तथा औषध से दूर करे। दुख आने पर बच्चों की तरह रोये नहीं। जवानी, सौंदर्य, जीवन, धन, आरोग्य तथा प्रेमियों का समागम अनित्य हैं, छूट जाने वाले हैं; अतएव इनमें मोह न करे। जो दुख सब पर है, उसको लेकर शोक क्यों करे? यदि आये हुए दुख को टालने का कोई उपाय दिखे, तो उसके लिए उपाय करे।

यह पक्की बात है कि जीवन में सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक है। जो विषयों में आसक्त है, उसका दुख अपार है। जो मनुष्य अपने मन को दुख-सुख से ऊपर कर लेता है, वह निर्भय ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होता है। अतएव वह शोक-मुक्त हो जाता है। भोगों को प्राप्त करने में दुख है। उनकी रक्षा करने में भी सुख नहीं मिलता। दुख से ही उनकी प्राप्ति होती है। अतएव उनके नाश होने में दुख नहीं मानना चाहिए। अव्यक्त आत्मा का बोध कराने के लिए संसार में कोई उदाहरण नहीं है। इसलिए तप से, अनुमान से, शम-दम से, जन्मजात सद्गुणों से, सद्ग्रंथों के अध्ययन एवं गुरुवचन सुनकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न करे। बोध-रहित तथा साधनाहीन मनुष्य बाहरी क्रियाओं से शांति चाहता है; किंतु आत्मा गुणों से अतीत होने से स्वभावतः तर्क का विषय नहीं

है। धर्म से मनुष्य कल्याण की तरफ बढ़ता है और अधर्म से पतन की तरफ जाता है। विषयासक्त मनुष्य भवसागर में बहता है, और जो विषय-विरक्त होता है वह आत्मज्ञान में स्थित होकर मुक्त हो जाता है।

आगे मनु कहते हैं-संयमी पुरुष ही आत्मा का साक्षात्कार करता है, विषयासक्त मनुष्य हृदय में विराजमान आत्मा रूपी परमात्मा का अनुभव नहीं कर पाता। केवल वेदाध्ययन का फल नाशवान है, अविनाशी आत्मा में स्थिति का फल अक्षय है। आत्मा अनादि-अनंत होने के कारण अविनाशी है। अविनाशी होने से दुःखरहित है। वह हर्ष-शोकरहित द्वंद्वतीत है। परंतु मनुष्य अपने प्रमादवश साधनाहीन तथा विषयासक्त रहता है, इसलिए वह आत्मस्थिति का काम नहीं करता। मनुष्य विषयासक्त है। वह विषय-भोगों को स्थिर समझता है। वह सांसारिक पदार्थों को पाने की लालसा में निरंतर दौड़ता रहता है; इसलिए वह स्वरूपस्थिति से वंचित रहता है। मोहग्रस्त मनुष्य जिन प्रिय लगने वाली वस्तुओं को देखता है, उन्हीं को पाने की लालसा रखता है, आत्मा तो दिखता नहीं, इसलिए उसका स्मरण ही नहीं होता।

जो तुच्छ विषयों में फंसा होगा, वह आत्मानुभव कैसे कर सकता है? ध्यान द्वारा आत्मसाक्षात्कार होता है, किंतु वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसलिए स्वरूपज्ञान द्वारा बुद्धि, मन तथा इंद्रियों को निर्मल करके आत्मसाक्षात्कार कर सकता है। जो प्रज्ञा प्रवीण, मानसिक बल से संपन्न तथा कामनाओं से ऊपर है, वही आत्मस्थिति पा सकता है। जिसके मन में सदगुण हैं, विषय-विरक्ति है और जो शुभाशुभ भावों से ऊपर उठकर निरंतर निर्मल है, वही गुणातीत साधक ब्राह्मी सुख का अनुभव करता है।

इस पृथ्वी का अंत नहीं दिखता, परंतु कहीं तो इसका अंत है ही। जैसे समुद्र का जहाज लहरों से टकराता हुआ किनारे लगता ही है, वैसे संसार-सागर में गोता लगाते हुए मनुष्य बोध के अनुकूल वातावरण पाकर संसार-सागर से पार हो ही जाता है। जैसे सूर्य अस्ताचल को जाकर अदृश्य हो जाता है, वैसे ज्ञानी आत्मलीन होकर अदृश्य हो जाता है। साधक को चाहिए कि वह अनागत, स्वयंभू, नित्य विद्यमान, अविनाशी, सनातन, अचल, निर्विकार अमृतस्वरूप आत्मा में स्थित होकर मुक्त हो जाय (अध्याय - )।

## मीमांसा

ऊपर की बातें मनु ने कहीं कि नहीं कहीं, इसका महत्त्व नहीं है। वस्तुतः वे परम सत्य हैं। उपोद्घात में संवाद में बातें कहलवायी जाती हैं। जो यथार्थ है वह ऋषि-मंत्र है, गुरुवाणी है। हमें इसका आचरण करना चाहिए।

. श्रीकृष्ण में अनंत ब्रह्मांड नायकत्व का प्रतिपादन

## . श्रीकृष्ण में अनंत ब्रह्मांड नायकत्व का प्रतिपादन

दो सौ सात ( )वें अध्याय से दो सौ ग्यारह ( )वें अध्याय तक श्रीकृष्ण की महिमा में लिखा गया है। बताया गया है कि श्रीकृष्ण ही ईश्वर हैं। जो श्रुति में 'पुरुष एवेदं सर्वम्' कहा गया है, वह श्रीकृष्ण ही सर्वव्यापी पुरुष हैं। 'पुरुष एव इदम् सर्वम्' यह सब कुछ पुरुष ही है, श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण ने तत्त्वों की रचना की। उन्होंने पृथ्वी की रचना करके जल में शयन किया। फिर उन्होंने मन से संकर्षण को पैदा किया। फिर श्रीकृष्ण की नाभि से कमल प्रकट हुआ। उस कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। इसके बाद मधु नाम का असुर पैदा हुआ। वह बड़ा उग्र था, अतएव भगवान ने उसे मार डाला। इसी से सर्व सात्वतशिरोमणि श्रीकृष्ण का नाम मधुसूदन पड़ा। इसके बाद श्रीकृष्ण ने अपने मुख से ब्राह्मणों को, दोनों भुजाओं से क्षत्रियों को, जांघों से वैश्यों को तथा पैरों से शूद्रों को पैदा किया।

सत्युग में संकल्प मात्र से सृष्टि होती थी। त्रेता में छू लेने मात्र से बच्चे पैदा होते थे। द्वापर में मैथुन का सूत्रपात हुआ। कलियुग में मैथुन से सृष्टि है ही। श्रीकृष्ण भूतनाथ तथा सबके अध्यक्ष हैं। दक्षिण भारत में जन्म लेने वाले आंध्र, गुह, पुलिंद, शबर, चुचुक और मद्रक ये सब म्लेच्छ हैं। यवन, कांबोज, गांधार, किरात और बरबर उत्तर भारत में जन्मे। ये सब पापाचारी होकर पृथ्वी पर घूमते हैं और चांडाल, कौए तथ गीध जैसे मलिन आचरण करते हैं।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने लोकों तथा प्राणियों को उत्पन्न किया। वे ही दुखों के नाशक और प्राणियों के परमगति हैं। देवर्षि नारद तो सर्वत्र घूमते ही हैं। वे हिमालय के पास जाकर श्री हरि की स्तुति करने लगे। वहां भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए। फिर तो भगवान श्रीकृष्ण के अंगों की शोभा का क्या कहना! भगवान नारद को आशीर्वाद देकर चले गये। गोविंद की आराधना करके लोग तर जाते हैं। ये सारी बातें नारद ने ही भीष्म को बतायी थीं, तब भीष्म ने युधिष्ठिर के पूछने पर उनसे कहा।

अगले दो सौ आठ ( )वें अध्याय में ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियों की वंशावली और प्रत्येक दिशा में निवास करने वाले महर्षियों का वर्णन है। आगे दो सौ नव ( )वें अध्याय में विष्णु भगवान का वाराह (सुअर) अवतार का वर्णन आता है। दैत्य, असुर, दानव बहुत बढ़ गये थे। ये बहुत बलवान थे, इनके भय से देवता भागे-भागे फिरते थे। इसलिए भगवान

विष्णु सुअर का रूप धरकर दैत्यों की भीड़ में घुस गये, और उनका विध्वंस कर डाले। इसके बाद सभी देवता वाराह भगवान की स्तुति करने लगे। वे भगवान श्रीकृष्ण ही थे। नारद जी के पूछने पर प्राणियों के उद्धार के लिए भगवान ने स्वयं यह मंत्र बताया-‘ओं नमो भगवते वासुदेवाय’। इसके बाद नारद ने भगवान की लंबी स्तुति की। पश्चात भगवान ने अपने भक्तों की बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने कहा-नारद ! मेरा भक्त यदि श्रद्धापूर्वक केवल मेरा नमस्कार कर ले तो मैं उसे अविनाशी लोक देता हूँ, चाहे वह चांडाल ही क्यों न हो।

दो सौ दस ( )वें अध्याय में गुरु और शिष्य के संवाद रूप में श्रीकृष्ण की महिमा कही गयी है। गुरु शिष्य को बताते हैं कि संपूर्ण वेदों का मुख प्रणव तथा सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा, इंद्रिय-संयम, सरलता और परम तत्त्व, यह सब कुछ वासुदेव कृष्ण ही हैं। ब्रह्म ही ने वृष्णि कुल में श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया है। इस कथा को तुम मुझसे सुनो; और ब्राह्मण ब्राह्मण को, क्षत्रिय क्षत्रिय को, वैश्य वैश्य को तथा शूद्र महामनस्वी शूद्र को भगवान की कथा सुनावे। इसके साथ गुरु ने सृष्टि की उत्पत्ति तथा जड़-चेतन का भेद और संसार-सागर से तरने के उपाय बताये हैं।

इसी क्रम में दो सौ ग्यारह ( )वां अध्याय आता है जिसमें आध्यात्मिक बातें भी आती हैं। जिस प्रकार अचेतन लोहा चुंबक की तरफ खिंच जाता है, उसी प्रकार जन्म लेने पर प्राणी के स्वाभाविक संस्कार तथा अविद्या, काम, कर्म आदि अन्य गुण उसकी ओर खिंच आते हैं। जन्म-मरण का चक्र प्रवाह रूप में चल रहा है। अव्यक्त इसकी नाभि; व्यक्त अरे; सुख-दुख, इच्छा आदि विकार नेमि; तथा आसक्ति धुरा है। क्षेत्रज्ञ आत्मा इसका चालक है। जैसे तेली कोल्हू में तिल डालकर उसे पेरते हैं, वैसे सभी प्राणी विषयासक्त होने से अज्ञानजनित भोगों द्वारा दबा-दबाकर संसार-चक्र में पड़े जा रहे हैं। विवेकी पुरुष को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद समझ लेना चाहिए। दोनों का तादात्म्य बंधन है। इस बंधन के कारण चेतन को अपने स्वरूप का स्मरण नहीं होता है। जैसे आग से भुने हुए बीज पुनः नहीं उगते, वैसे आत्मज्ञान की आग में अविद्यादि क्लेश के भुन जाने पर जीव पुनः जन्म-मरण में नहीं पड़ता ( अध्याय - )।

## मीमांसा

उपर्युक्त कृष्ण-महिमा किसी कट्टर कृष्णभक्त ने लिखी है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं-“नारायण, कृष्ण या गोविंद-महिमा का किसी भागवत

. सदाचार और निर्विषय बोध मोक्ष-पथ है

लेखक ने वर्णन किया है जो गुप्त-युग में जोड़ा गया विदित होता है।” अवतारवाद और पैगंबरवाद मनुष्य को यथार्थता से हटाकर अंधकार में डालता है। एक देहधारी को अनंत ब्रह्मांड नायक अथवा सबका एकमात्र उद्धारक बताकर धार्मिक कहलाने वालों ने मिथ्या संदेश तथा सांप्रदायिक विष फैलाया है। श्रद्धाहीन व्यक्ति भटका हुआ है, और अति श्रद्धावान व्यक्ति उससे अधिक भटका हुआ है। आंध्र, पुलिंद आदि के प्रति घृणा व्यक्त करना अपनी खोटी धारणा है। भागवतों ने चारों वर्णों का उद्धार होना माना है, इसके लिए उनको धन्यवाद है।

### . सदाचार और निर्विषय बोध मोक्ष-पथ है

कर्मनिष्ठों को कर्ममार्ग अच्छा लगता है, किंतु ज्ञानमार्ग वालों को ज्ञान के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं लगता। वे धन्य हैं जो वेदों के विद्वान हैं और कर्ममार्ग से उठकर आत्मज्ञान का अनुसरण करते हैं। सत्पुरुषों ने सदैव ज्ञानमार्ग को चुना है। इसी से परम गति की प्राप्ति होती है। देहाभिमानी मोहवश सांसारिक पदार्थों के संग्रह में लग जाते हैं। जो देह-बंधन से मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें कभी अशुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। उन्हें लोक-परलोक की इच्छा त्यागकर साधना द्वारा मोक्षद्वार खोलना चाहिए। “जैसे लोह मिश्रित स्वर्ण आग में पकाकर शुद्ध किये बिना अपने स्वरूप में उद्घाटित नहीं होता, वैसे मन के कषाय-राग-द्वेष पूर्णतया धुले बिना ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने आप में प्रकाशित नहीं होता।”

जो लोग काम, क्रोध और लोभ-वश अधर्म का आचरण करते हैं, वे अपने साथियों को भी उसी में लगाकर उनके साथ डूबते हैं। अतएव कल्याणार्थी को शब्दादि पांचों विषयों के मोह में नहीं डूबना चाहिए। विषयों में डूबने से हर्ष, क्रोध और विषाद ये सत, रज और तम के विकार उत्पन्न होते हैं। यह शरीर जड़ तत्त्वों का विकार है और तीनों गुणों से आवेष्टित है। इसमें रहकर स्वरूपतः निर्विकार आत्मा क्या कहकर किसकी निंदा और किसकी प्रशंसा करे? अज्ञानी मनुष्य विषयों में आसक्त होते हैं। वे ज्ञानहीन यह नहीं जानते कि शरीर पृथ्वी का विकार है। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लीपकर सुरक्षित रखा जाता है, वैसे मिट्टी की देह को मिट्टी के विकारस्वरूप अन्न-फलादि का सेवन कर सुरक्षित

- 
- . भारत सावित्री, पृष्ठ ।
  - . लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते ।  
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते ,

रखा जाता है। मधु, तेल, दूध, घी, मांस, लवण, गुड़, अन्न, फल, मूल आदि सब मिट्टी के ही विकार हैं। जैसे वनवासी संन्यासी स्वादिष्ट भोजन की इच्छा नहीं रखता, वह रूखा-सूखा फल-मूल जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करता है, वैसे संसार-वन में रहने वाला गृहस्थ श्रम के फल में जो मिल जाय उसे औषध समझकर उससे जीवन-निर्वाह करे। सत्य, शौच, आर्यत्व (सरलता), त्याग, तेज, पराक्रम, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तप के प्रभाव से विषयों का विवेचन करते हुए उनसे अपने को निवृत्त करे और इंद्रिय-मन पर संयम करते हुए शांति में जीवन व्यतीत करे।

लंपट मनुष्य अज्ञानवश तीनों गुणों-रज, सत और तम में मोहित होकर चक्के की तरह घूमते रहते हैं। जो विवेक रखता है, वह अज्ञान से उत्पन्न अहंकार और दुख को त्याग देता है। पांचों तत्त्व, इंद्रियां, पांचों विषय, तीनों गुण और समस्त लोकपालों के सहित तीनों लोक अहंकार में ही स्थित हैं। जैसे नियत काल ऋतु संबंधी गुण प्रकट करता है, वैसे समस्त प्राणियों में अहंकार ही कर्मों का प्रेरक है। अहंकार तीन गुणों वाला है। तमोगुण अंधकारधर्मा होने से मोह में डालने वाला है। यह अज्ञान से उत्पन्न है। प्रीति उत्पन्न करने वाला सातस और दुख उत्पन्न करने वाला राजस गुण है। प्रसन्नता, हर्षजनित प्रीति, संशयहीनता, धैर्य और स्मृति सत्वगुण के कार्य हैं। काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह, भय, क्लान्ति, विषाद, शोक, अप्रसन्नता, मान, दर्प, अनार्यता (कुटिलता) रजो और तमोगुण के कार्य हैं।

उपर्युक्त दोषों तथा अन्य दोषों के लिए भी विचार करे कि इनमें कौन-कौन दोष मुझ में हैं। अमुक दोष कितनी मात्रा में है, ऐसा विचारकर उनसे छूटने का प्रयास करे। सारे दोषों का कारण अज्ञान है। अज्ञान सहित दोषों के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर अंतःकरण पूर्ण शुद्ध हो जाता है और शुद्ध अंतःकरण आत्मज्ञानी मुक्त हो जाता है। जैसे लोह से बनी हुई छेनी की धार लोह की जंजीर काटकर स्वयं नष्ट हो जाती है, वैसे शुद्ध सतो गुण रज-तम के बंधनों को काटकर स्वतः शांत हो जाता है। यद्यपि तीनों गुण देह के कारण हैं, तथापि शुद्ध सतो गुण ही कल्याणार्थी के लिए समता का साधन है। अतएव साधक को रज-तम का त्यागकर शुद्ध सतो गुण द्वारा बुद्धि को शुद्ध करना चाहिए। रजोगुण में आसक्त मनुष्य अनीतिपूर्वक कार्य में लगकर भोगों में डूब जाता है, तमोगुणी मनुष्य लोभ और क्रोध जनित कर्म करता है। वह हिंसक और मोहमूढ़ हो जाता है; परंतु सतो गुणी मनुष्य सदैव शुद्ध कर्म करता है। वह ज्ञान तथा श्रद्धा युत शुभ कर्म करता है (अध्याय )।

. सदाचार और निर्विषय बोध मोक्ष-पथ है

काम, क्रोध और लोभ को पूर्णतया त्यागकर अक्षय, अविनाशी विष्णु-पद अर्थात् आत्मपद प्राप्त होता है। काम, क्रोध तथा लोभ में डूबे जीव अहंकार पूर्वक कर्म करते हैं। अतएव वे विषयासक्त हो जाते हैं। आसक्त व्यक्ति शोकग्रस्त होता है। वह सुख-दुख के चक्कर में पड़ा जन्म-मरण में घूमता रहता है। आसक्त जीव गर्भवास करता है जहां मल-मूत्र हैं। यह सब विषय-तृष्णा का फल है। जो मोक्ष चाहे, वह स्त्रियों को भवबंधन का जाल बुनने वाली तंतुवाहिनी समझे और उनसे दूर रहे। स्त्रियां क्षेत्र (प्रकृति) स्वरूप तथा पुरुष क्षेत्रज्ञ स्वरूप हैं। जैसे प्रकृति (जड़ माया) पुरुष (चेतन आत्मा) को बांधती है, वैसे स्त्रियां अपने माया-जाल में पुरुषों को बांधती हैं। अतएव कल्याणार्थी मनुष्य को स्त्रियों से दूर रहना चाहिए। ये स्त्रियां भयानक कृत्या के समान हैं, इसलिए ये अज्ञानी पुरुषों को मोह में फंसा लेती हैं। मन-इंद्रियों में विकार उत्पन्न करने वाली स्त्रियां रजोगुण रूप हैं। स्त्री में आसक्त होकर पुरुष के वीर्य से संतान पैदा होती है। जैसे मनुष्य अपने शरीर से पैदा हुए जूं-लीख आदि स्वेदज कीड़ों को त्याग देता है, वैसे अपने कहलाने वाले अनात्म संतान नामधारी कीड़ों को त्याग दे। वीर्य से या पसीने से जंतु पैदा होते हैं। कल्याणार्थी उन सबकी उपेक्षा कर दे।

जीव पांचों विषयों में आसक्त होकर जन्म-मरण के चक्कर में घूमता रहता है। जीव जन्म लेकर सब अवस्थाओं और सब समय में शारीरिक और मानसिक दुखों से उत्पीड़ित रहता है। “देह का उत्पन्न होना दुख है। देहाभिमान से दुख बढ़ता है। और देहाभिमान त्यागकर देने पर दुखों का अंत होता है। जो मनुष्य दुखों के अंत होने का यह ज्ञान रखता है, वह मुक्त हो जाता है।” विषय-तृष्णा से मुक्त मनुष्य विषयों से छूट जाता है। विषयासक्ति से सर्वथा छूटा हुआ मनुष्य मुक्त हो जाता है (अध्याय )।

## मीमांसा

ऊपर स्त्रियों को पुरुषों को बांधने वाली बताया गया है। वैसे ही पुरुष स्त्रियों को भी बांधने तथा पतित करने वाला है। वस्तुतः पतित करने वाला तो अपने मन का अज्ञान है। कल्याणार्थी पुरुष स्त्री-संग से बचे और इसी प्रकार कल्याण चाहने वाली स्त्रियां पुरुषों से बचें।

. दुःखं विद्यादुपादानादभिमानाच्च वर्धते।

त्यागात् तेभ्यो निरोधः स्यान्निरोधज्ञो विमुच्यते

( महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय , श्लोक )

## . ब्रह्मचर्य, वैराग्य तथा आत्मज्ञान से परमपद की प्राप्ति

भीष्म ने कहा-प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्यों में ज्ञानी तथा पवित्रात्मा श्रेष्ठ हैं। नेत्रहीन अकेला मनुष्य पथ चलते समय कष्ट पाता है, वैसे ज्ञानहीन जीवन-पथ में दुख पाता है। कर्मकांड में लगे रहने से मोक्ष नहीं मिलता। वाणी, देह और मन की पवित्रता, क्षमा, सत्य, धैर्य और स्मृति को सभी संप्रदायों के ज्ञानी कल्याणदायी बताते हैं। ब्रह्मचर्य को तो शास्त्रों में ब्रह्मस्वरूप ही बताया गया है। यह श्रेष्ठ धर्म है। इसी से परम पद मिलता है। यह परम पद प्राण-अपान आदि पांचों प्राणों, मन, बुद्धि और दसों इंद्रियों के संघात स्वरूप शरीर के संयोग से रहित है। इसे पांचों इंद्रियों से पाया नहीं जा सकता। विवेक से इसे समझकर इसकी प्राप्ति के लिए निर्भय ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य-पालन का उपाय है कि जब मन में रजोगुण आये तो उसकी उपेक्षा कर दे। स्त्रियों की चर्चा न करे और न सुने। स्त्री की तरफ देखने की इच्छा न रखे। उन्हें नग्न तथा अर्ध नग्न अवस्था में न देखे। नस-नाड़ियों का जोड़ शरीर तो मुरदा है। अतएव देहाभिमान में मन न बांधे। जैसे दूध मथने से घी निकलता है, वैसे रजोगुण, संकल्प, स्पर्श आदि से मथन करके वीर्य निकलता है। वीर्य की गति प्राणियों में संकरता लाती है। जो इससे विरक्त रहते हैं, वे अपने जीवन के सारे दोषों को भस्म कर डालते हैं। साधक भोजन पर संयम रखता है और साधना द्वारा तीनों गुणों को जीतकर निर्विकल्प समाधि साधता है। वह मुक्तिलाभ करता है। निर्मल-मन के महात्मा के हृदय में तत्त्वज्ञान उदय हो जाता है। इसलिए मन को निर्मल करने के लिए निर्दोष और निष्काम कर्म करे।

जवानी में अर्जित किया हुआ ज्ञान प्रायः बुढ़ापा में क्षीण हो जाता है; परंतु परिपक्व प्रज्ञावान ऐसी मानसिक शक्ति प्राप्त कर लेता है कि उसका ज्ञान कभी क्षीण नहीं होता। जैसे कोई दुर्गम मार्ग को सरलता से पार कर ले, वैसे वह तीनों गुणों के बंधनों को तोड़कर जैसे-जैसे अपने दोषों को देखता है, वैसे-वैसे उन्हें जीतकर अमृतमय आत्मस्थिति का अनुभव करता है-*दोषानतीत्यामृतमश्नुते* ( , )।

भोगकर विषयों को नहीं जीता जा सकता। भोगासक्त मनुष्य दुख भोगते रहते हैं। जो महात्मा विषयों का सर्वथा त्यागकर देते हैं, वे परम पद पा जाते

. ब्रह्मचर्य, वैराग्य तथा आत्मज्ञान से परमपद की प्राप्ति

हैं। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग तथा नाना दुखों से संसार भरा है। मानसिक पीड़ा से सब जीव पीड़ित हैं। इसलिए संसार से मोक्ष लेने का उपाय करना चाहिए। “इसके लिए शरीर, मन और वाणी की क्रियाओं को पवित्र रखे, अहंकार-शून्य हो जाय, आत्मज्ञान संपन्न, इच्छारहित तथा शांतचित्त होकर भिक्षु सुखपूर्वक विचरण करे।”

प्राणियों पर दया करते रहने से भी उनके प्रति आसक्ति हो सकती है। इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए यह सोचे कि सब जीव अपने-अपने कर्म-फल भोग रहे हैं; अतएव सबके प्रति उपेक्षा रखे। मनुष्य पाप करे या पुण्य, उनके फल उन्हें भोगने ही हैं। इसलिए पाप का त्याग तथा पुण्य कर्मों से अनुराग रखना चाहिए।

अहिंसा, सत्य भाषण, सभी प्राणियों से सरलता का बरताव, क्षमा और प्रमाद-शून्यता, ये सद्गुण जिनके पास हैं, वे ही मनुष्य सुखी रहते हैं। जो यह समझता है कि अहिंसा आदि उपर्युक्त सद्गुण सभी प्राणियों के लिए सुखदायी तथा दुखों के निवारक हैं, वही सर्वज्ञ है और वही सुखी है। बुद्धि द्वारा मन का शमन करके उसे अंतर्मुख करे। किसी का अहित न सोचे, असंभव पदार्थ की इच्छा न करे, मिथ्या बातों की चिंता न करे और दृढ़तापूर्वक मन को स्ववश करे। निर्णय वाणी का श्रवण करे और दृढ़तापूर्वक यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे। जो सच्चे धर्म को समझता है और सद्बचन बोलना चाहता है, वह ऐसी बात बोले जो सत्य के साथ मधुर तथा परनिंदा से रहित हो। उसमें शठता, कठोरता, क्रूरता और चुगुली आदि दूषण न हों। ऐसी बात भी स्थिर चित्त से बोले और कम बोले। ‘वाक्प्रबद्धो हि संसारः’-संसार का सारा व्यवहार वाणी से बंधा हुआ है, इसलिए सदैव निर्दोष वाणी बोले। यदि वैराग्य-भाव हो, तो प्रज्ञा द्वारा मन को वश में करके अपने दुष्कर्मों को योग्य व्यक्ति के सामने कह दे, तो उसका पाप हलका हो जायगा और वह अपने सुधार में साहस कर सकेगा। रजो-तमो गुणों से प्रभावित होकर मनुष्य विषय भोगों में अनुरक्त होता है और उसके फल में दुख पाता है। अतएव ऐसा शुभ कर्म करे कि जिससे उसका मन प्रसन्न और चित्त में धैर्य बढ़े। चोरी का माल लिए रहने से भय होता है। जो ऐसा नहीं करता है, वह निर्भय है। जब तक अनात्म पदार्थों में अहंता-ममता है तब तक दुख है और जब वह समाप्त हो गयी, तब मनुष्य निर्भय तथा सुखी हो जाता है।

---

. वांमनोभ्यां शरीरेण शुचिः स्यादनहंकृतः।  
प्रशान्तो ज्ञानवान् भिक्षुर्निरपेक्षश्चेत् सुखम् ,

“जो संशय-रहित, इच्छा-रहित, सर्व परिग्रहों का त्यागी, एकांतवासी, स्वल्पाहारी, तपस्वी तथा इंद्रियजित है; जिसके मन की सारी पीड़ा ज्ञानाग्नि में जल गयी है, जो योगाभ्यासरत तथा आत्मलीन है, वह स्थिर चित्त द्वारा निस्संदेह परम गति एवं परम शांति को प्राप्त कर लेता है।”

प्रज्ञाशील अपनी बुद्धि को शुद्ध कर ले। फिर बुद्धि से मन को तथा मन से इंद्रियों को काबू में रखे। मनोविजयी अंतःकरण से ज्योतित होता है। वह निरंतर ईश्वरत्व की तरफ चलता है, अपना स्वामी हो जाता है। वह ब्रह्म हो जाता है, महान हो जाता है। जीवनपर्यंत वही काम करना चाहिए जिससे मन अंतर्मुख रहे। अन्न के दाने, उड़द, तिल की खली, साग, जौ की लप्सी, सत्तू, मूल, फल आदि जो कुछ मिले साधक संतोषपूर्वक उसी से निर्वाह करे। देश और काल के अनुसार सात्विक आहार ग्रहण करे। जो स्वास्थ्य और साधना के अनुकूल हो, वही आहार ग्रहण करे। साधना-अभ्यास कभी न रोके। जैसे आग धीरे-धीरे प्रचंड हो जाती है, वैसे साधना से धीरे-धीरे मन प्रशांत होता जाता है। फिर तो ज्ञान सूर्य के समान प्रकाशित हो जाता है—ज्ञानम् अर्क वत् सम्प्रकाशते ( , )। शास्त्रों में कहीं आत्मा और परमात्मा अलग-अलग बताये गये हैं और कहीं कहा गया है कि आत्मा ही परमात्मा है। इसको लेकर भ्रम में न पड़े, अपितु स्वतः शोधन करे और जरा-मृत्यु-रहित निर्मल, सनातन ब्रह्म में, आत्मा में स्थित हो (अध्याय )।

साधक शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे। स्वप्न जाग्रत का आभास है। शुद्ध आहार, व्यवहार तथा साधना द्वारा मन पर विजय होती है। जैसे-जैसे मन शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे स्वप्न भी शुद्ध होता जाता है। कामनाओं में आसक्त मन स्वप्न में भी वैसा ही प्रपंच देखता है। मन का साक्षी तो परम पुरुष आत्मा ही है। जाग्रत में मनुष्य जैसे-जैसे मंतव्य, वक्तव्य एवं कर्तव्य करता है, वैसे-वैसे ही उसके स्वप्न होते हैं। आत्मज्ञान एवं आत्मस्थिति बिना स्वप्न शुद्ध नहीं होता। मन सब तरफ चलता है, किंतु मन आत्मा के ही अधीन है। आत्मा ही सारे ज्ञान-विज्ञान एवं देवता का प्रतिष्ठापक है, अतएव आत्म-गरिमा को जानना चाहिए। आत्मा ही सारे ज्ञान-विज्ञान का मूल है। जो आत्मशांति चाहे, वह मन को निर्मल करे। साधना से शुद्ध मन सूर्यवत ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित

- . निःसंदिग्धमनीहो वै मुक्तः सर्वपरिग्रहैः।  
विविक्तचारी लघ्वाशी तपस्वी नियतेन्द्रियः  
ज्ञानदग्धपरिक्लेशः प्रयोगरतिरात्मवान्।  
निष्प्रचारेण मनसा परं तदधिगच्छति , -

. ब्रह्मचर्य, वैराग्य तथा आत्मज्ञान से परमपद की प्राप्ति

हो जाता है। तीनों लोकों और जड़ प्रकृति का ज्ञाता यह देह-निवासी आत्मा ही है। यह जब अज्ञान से सर्वथा मुक्त हो जाता है, तब स्वयं महेश्वर रूप में स्थित हो जाता है- “तमसोऽन्ते महेश्वरः ( , )।” देवताओं तथा असुरों में ब्रह्म तत्त्व छिपा हुआ है। यह ज्ञान लक्षण वाला कहा जाता है- “देवासुरैर्गुप्तं तदाहुर्ज्ञानलक्षणम् ( , )।” देव तथा असुर तीनों गुणों से वेष्टित हैं। ब्रह्म इन गुणों से रहित अक्षर, अमृत, स्वयं प्रकाश तथा ज्ञानस्वरूप है। शुद्ध मन वाले महात्मा उसे जानकर और उसमें स्थित होकर परम गति को प्राप्त होते हैं। आत्मज्ञाननिष्ठ पुरुष ही उसको युक्तिसंगत रूप में बता सकते हैं। अथवा इंद्रिय-मन को अंतर्मुख करके ब्रह्म-साक्षात्कार किया जा सकता है- “प्रत्याहारेण वा शक्यमक्षरं ब्रह्म वेदितुम् ( , )।”

प्रवृत्तिपूर्ण धर्म जन्म-मरण का कारण है और निवृत्तिपूर्ण धर्म मोक्ष का कारण है। जो मुनि निरंतर ज्ञान तत्त्व का चिंतन करता है, शुभाशुभ से ऊपर है और निवृत्ति-परायण है, वह परम गति को प्राप्त करता है। विवेकवान अपने आपको जड़-प्रकृति से अलग समझे। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं, किंतु प्रकृति जड़ है और पुरुष चेतन है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि है। पुरुष अर्थात् चेतन जीव मन-इंद्रियों से कर्म करता है। कर्म करने से वह कर्ता कहलाता है। कौन, मैं, यह और वह शब्दों से उसी का वर्णन होता है। जैसे मनुष्य पगड़ी, वासस (लुंगी) और उत्तरीय (चदर) से आवेष्टित रहता है, वैसे देहाभिमानी जीव तीनों गुणों से लिपटा रहता है। जिसे दिव्य आत्मस्थिति की इच्छा हो वह मन शुद्ध रखे और शरीर से कठोर नियमों का पालन करते हुए तप करे। निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ तप है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप है। मन-वाणी का संयम मानसिक तप है। सात्विक भोजन इंद्रिय-संयम में सहायक है। भोजन उतना ही ग्रहण करे जितना आवश्यक हो। धैर्य से मन-इंद्रियों का संयम करते हुए इसी जीवन में परम शांति प्राप्त ही कर लेना चाहिए। योगी की बुद्धि व्यथित नहीं होती। वह वैराग्य के बल से अपने स्वरूप में स्थित रहता है। जीवनपर्यंत अप्रमाद से चलने से इसी जीवन में वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

कुछ साधक शास्त्रों के अनुसार साधना करते हैं; और जिसने योग द्वारा बुद्धि को शुद्ध कर लिया है, वह आश्रय-रहित, निरालंब अपनी महिमा में स्थित रहता है। निरंतर लगनशील साधक स्वयं स्वरूप ब्रह्म में स्थित हो जाते हैं। “साधक अपने हृदय में आत्मा रूपी परमात्मा की स्थिति जानकर अव्यक्त स्वरूप हो जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। वे उस निर्विकार तथा अक्षय

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

परम पद को पाकर परमानंद में निमग्न हो जाते हैं।” इतना ही विज्ञान है। यह जगत है भी, और नहीं भी। जगत जगत में है, मेरे आत्मा में नहीं है। प्राणी तृष्णा की डोरी में बंधकर चक्के के समान घूम रहे हैं। जो आत्मज्ञान में दृढ़ हो जाता है, वह तृष्णा से छूट जाता है (अध्याय - )।

## मीमांसा

निर्मल मन एकाग्र होता है। एकाग्र मन आत्मलीन होता है। आत्मलीनता एवं स्वरूपस्थिति ही परम पद है।

### . सांख्यवादी पंचशिख का आध्यात्मिक उपदेश

भीष्म ने कहा-मिथिला में जनक राज्य करते थे। वे देह-त्याग के बाद आत्मा के अस्तित्व पर विचार करते थे। उनके दरबार में सौ आचार्य सदा रहते थे। वे सब विभिन्न आश्रमों के निवासी थे और वे विभिन्न संप्रदायों के चिंतक थे जो राजा जनक को अपने विचार बताते रहते थे; राजा जनक को उनके विचारों से संतोष नहीं होता था। एक बार महर्षि कपिल के अनुयायी महामुनि पंचशिख जनक की सभा में पधारे। वे संन्यास-धर्म के पूर्ण ज्ञाता और तत्त्वज्ञान के निर्णय में सुनिश्चित सिद्धांत के पोषक थे। वे संशय-रहित तथा निर्द्वंद्व स्थिति के महापुरुष थे। वे कामना-शून्य तथा अद्वितीय ऋषि थे। सांख्य के विद्वान उन्हें साक्षात् कपिल ही मानते थे। उन्हें आसुरि मुनि का प्रथम शिष्य बताया जाता है। वे पंच इंद्रियों को जीतकर ऊपर उठे होने-शिखा स्थानीय होने से पंचशिख कहलाते थे। आसुरि ने अपने श्रेष्ठ शिष्य पंचशिख को क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ एवं प्रकृति-पुरुष का ज्ञान दिया था।

जनक की जिज्ञासा देखकर पंचशिख ने उनको उपदेश दिया। उन्होंने जातिनिर्वेद, कर्मनिर्वेद तथा सर्वनिर्वेद का उपदेश दिया। जाति=जन्म, जन्म लेना दुख है, यह बोध होना जातिनिर्वेद है, जन्म लेने के प्रति वैराग्य है। निर्वेद कहते हैं वैराग्य को। राग-द्वेषजनित कर्मों से वैराग्य होना कर्मनिर्वेद है और पिंड से ब्रह्मांड तक के समस्त भोगों के प्रति वितृष्णा एवं वैराग्य होना सर्वनिर्वेद है। पंचशिख ने कहा-जिसके लिए धर्म का आचरण किया जाता है, अच्छे कर्मों

---

. ज्ञात्वाऽऽत्मस्थं हरिं चैव न निवर्तन्ति तेऽव्ययाः।

प्राप्य तत् परमं स्थानं मोदन्तेऽक्षरमव्ययम् ,

. सांख्यवादी पंचशिख का आध्यात्मिक उपदेश

के फल में जो भोग प्राप्त होते हैं, वे लोक-परलोक के समस्त भोग नश्वर हैं। उनमें मोह करना अज्ञान है।

इसके बाद पंचशिख भौतिकवाद का खंडन करके देह से भिन्न आत्मसत्ता का प्रतिपादन करते हैं, जिसका विषय पीछे छाछठ ( )वें संदर्भ में मनु द्वारा वर्णित आ गया है। इसके बाद वे क्षणिक विज्ञानवाद का खंडन करके अविनाशी आत्मा का प्रतिपादन करते हैं। मन अस्थिर चित्त होकर भटकता है और कहीं एक कल्पना में रुककर जीर्ण हो जाता है। इस प्रकार अर्थ-अनर्थ में पड़कर मनुष्य दुखी रहता है। आत्मबोध ही मनुष्य को शांति दे सकता है। विषयों की लिप्सा अंत में दुख देती है। अंततः भोग छोड़कर मृत्यु के मुख में जाना है। जिस शरीर का नष्ट होना पक्का है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं है, उसके आधार में मिले बंधु-बंधवों से क्या लाभ है? जो यह सब विचारकर सबसे विरक्त और आत्म-अनुरक्त हो जाता है, वह पूर्ण शांति प्राप्त करता है। जड़ तत्त्वों से शरीर बना है और उन्हीं से उसका पोषण होता है। अतएव यह मेरा स्वरूप नहीं है। फिर इसमें आसक्ति कैसी? मृत्यु के मुख में जाने वाले शरीर में सुख कहां है? “इस प्रकार पंचशिख का उपदेश भ्रम तथा वंचना से रहित, निर्दोष और आत्मसाक्षात्कार कराने वाला था—*इदमनुपधिवाक्यमच्छलं परमनिरामयमात्मसाक्षिकम्* ( , )।”

पंचशिख ने आगे कहा—देह छोड़ने के बाद न आत्मा का नाश होता और न वह बदलकर कुछ अन्य होता है। विषयों के पूर्ण त्याग होने से मोक्ष होता है। आत्म तत्त्व का पूर्ण निश्चय महान पद शांति प्राप्त कराता है। देह में आत्मबुद्धि करने वाले न जीवन में शांति पाते हैं और न उनका जन्म-प्रवाह मिटता है। जो विवेकवान दृश्य-प्रपंच को अनात्म समझकर इसकी ममता छोड़ देते हैं, वे अहंकार-शून्य होकर आत्मसंतुष्ट हो जाते हैं। वे पुनः जन्म के दुख में क्यों पड़ेंगे? जन्म का आधार अहंता-ममता थी, वह मिट गयी।

सांख्यशास्त्र का ज्ञान सम्यक-वध है—सारे दुखों का नाशक है। इसमें त्याग की प्रधानता है। सारे कर्मों में त्यागभाव रखना चाहिए। जो आसक्ति-कामना का त्याग किये बिना अपना विनीत भाव दिखाते हैं—बड़े भक्त बनते हैं, उनका दावा झूठा है। वे अविद्यावश दुख पाते हैं। सेवा द्रव्य-त्याग का, संयम भोग-त्याग का, सहनशीलता देह-सुख-त्याग का तथा समाधि सर्वत्याग का उपाय है। यही त्याग की पराकाष्ठा है। दुखों से छूटने के लिए सर्वस्व त्याग आवश्यक है।

हर्ष, प्रीति, आनंद, सुख तथा मन की शांति सतो गुण के कार्य हैं;

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

असंतोष, संताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता रजोगुण के कार्य हैं और अविवेक, मोह, प्रमाद, नींद, आलस्य तमोगुण के कार्य हैं। तत्त्व-प्रकृति का संघात शरीर क्षेत्र है और निर्मल शुद्ध चेतन क्षेत्रज्ञ है। आत्मा अविनाशी तथा प्रकृति से अलिप्त है। जैसे नदियां समुद्र में विलीन होकर अपने नाम-रूप खो देती हैं, वैसे शरीर नष्ट होने पर वह जड़ प्रकृति में मिलकर अपना नाम-रूप खो देता है। ऐसी अवस्था में 'जीवेऽगृह्यमाणे' पकड़ से बाहर जीव का ग्रहण कैसे हो सकता है? कोई मुक्त जीव को कैसे देख सकता है? वह तो अदृश्य है। आत्मज्ञानी इसी जीवन में रहते हुए सबसे निर्लिप्त रहकर मुक्ति के सुख में रहता है और देह छूट जाने पर सदैव दुःखहीन हो जाता है।

संतान के मोही, देवी-देवताओं में उलझे हुए लोग दुःखों के मार्ग में भटकते हैं। जो इस प्रपंच को छोड़ देता है, वह परम शांति पाता है। जब मनुष्य पुण्य और पाप से ऊपर उठ जाता है और संपूर्ण पदार्थों से अनासक्त हो जाता है, तब वह निर्लिप्त असंग आत्मा में शाश्वत विश्राम पा जाता है। जैसे रुरु नामक मृग अपने पुराने सींग को और सांप अपनी केंचुली को छोड़कर उनकी ओर देखे बिना चल देते हैं, वैसे अहंकार और ममता से शून्य ज्ञानी सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है। जैसे वृक्ष को गिरते देखकर उस पर बैठे पक्षी उसे त्यागकर उड़ जाते हैं, वैसे ज्ञानी देहादि समस्त पदार्थों को काल के मुख में समाते हुए समझकर अपने असंग आत्मा में स्थित हो जाते हैं।

महामुनि पंचशिख के बताये हुए आत्मज्ञान को पाकर जनक एक स्थिर सिद्धांत पर दृढ़ हो गये। वे इस विवेक में जागरूक रहकर शोक-रहित हो गये।

एक समय सर्वेश्वर नारायण राजा जनक की परीक्षा लेने के लिए ब्राह्मण-वेश धरकर आये और मिथिला नगरी में उन्होंने आग लगा दी। मिथिला जलते देखकर जनक को कोई शोक नहीं हुआ, और उन्होंने कहा-“मेरे पास आत्मज्ञान का अनंत धन है। अतएव अब मुझे कुछ भी प्राप्त करना नहीं है। मिथिला के जल जाने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जलता है।” यथा-

*अनन्तं वत मे वित्तं भाव्यं मे नास्ति किंचन।*

*मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यते*

( अध्याय )

. आंखों वाला और अंधा एक साथ कौन? दम का महत्त्व

## मीमांसा

ऊपर के अंतिम अनुच्छेद का विषय कि नारायण ने जनक की परीक्षा लेने के लिए उनकी मिथिला में आग लगा दी, किसी पंडित का लगाया हुआ पुछल्ला है एवं प्रक्षेप है इसीलिए गीताप्रेस वालों ने भी उसके श्लोकों के नंबर नहीं दिये। प्रक्षेपकार ने सर्वेश्वर नारायण को भी अल्पज्ञ बना दिया जो जनक को नहीं समझ पा रहे थे और वे मिथिला में आग लगाकर उन्हें समझ सके। पंचशिख कपिल के सांख्यशास्त्र के चिंतक, उसके अनुसार साधक एवं कृतार्थ पुरुष थे। उनके उपदेश मार्मिक हैं।

## . आंखों वाला और अंधा एक साथ कौन?

### दम का महत्त्व

आगे दो सौ बीस ( )वां अध्याय है, जिसमें पहले सौ से अधिक श्लोक प्रक्षेप हैं। इसलिए गीताप्रेस ने इनमें नंबर नहीं दिया है। अंत में बीस श्लोक हैं जिनके नंबर हैं। पहले प्रक्षेप वाला अंश लें। यह पीछे का जोड़ होते हुए अच्छा उपदेश देने वाला है।

देवल नाम के एक ऋषि थे। उनकी पुत्री थी जिसका नाम था सुवर्चला। वह विवाह योग्य हो गयी। देवल को इसकी चिंता हुई। सुवर्चला ने पिता से कहा—पिता जी! आप मुझे ऐसे पति का संयोग कराइए जो आंख वाला हो, साथ-साथ अंधा हो। देवल ने कहा—पगली! एक ही व्यक्ति आंख वाला और अंधा दोनों साथ-साथ कैसे हो सकता है?

सुवर्चला ने कहा—पिता जी! मैं पगली नहीं हूँ। आप ब्राह्मण कुमारों को बुलाइए, मैं उनमें से स्वयं चुन लूंगी। देवल ने आदमी भेजकर ब्रह्ममंडली में सूचना दी। बहुत-से विद्वान ब्राह्मण युवक आये। सभा बैठी।

सुवर्चला ने अपनी शर्त बतायी कि मेरा पति वही हो सकता है जो आंख वाला तथा अंधा भी हो। ब्राह्मण युवकों ने एक दूसरे को देखा और कन्या को अबोध बालिका समझकर सब अपने-अपने स्थान लौट गये।

कुछ दिनों के बाद उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु देवल के यहां आये और उन्होंने सुवर्चला से उसकी शर्त के अनुसार अपने को आंख वाला और अंधा भी बताया। श्वेतकेतु ने उसका स्पष्टीकरण किया—जिसकी सत्ता से मनुष्य देखता, ग्रहण करता, स्पर्श करता, सूँघता, बोलता, स्वाद लेता, मनन करता तथा निश्चय करता है, वह आत्मा ही असली आंख है और उसका मुझे ज्ञान है। मैं वही हूँ।

इसलिए मैं आंख वाला हूँ। इसके विपरीत जिन इंद्रियों तथा मन से दृश्य-प्रपंच जाना जाता है वह मेरे में नहीं है। यदि ये न रहें तो संसार मेरे लिए नहीं है, मैं इस तथ्य को भी समझता हूँ, इसलिए मैं अंधा हूँ। आत्मा देहोपाधि में ही द्रष्टा है, अन्यथा संसार-प्रपंच उसमें है ही नहीं। मैं संसार को कारण-कार्य रूप देखकर अपने आप में स्थित, निर्भर तथा शांत हूँ। मैं पवित्र कर्मों से मृत्यु को पार कर आत्मज्ञान स्वरूप अमृतपद में स्थित हूँ और यथाप्राप्त में संतुष्ट रहकर ईर्ष्या-द्वेष रहित हो कालक्षेप करता हूँ।

सुवर्चला तथा श्वेतकेतु का विवाह हो गया। दोनों अपने निवास स्थान में थे। एक दिन श्वेतकेतु ने कहा-सुवर्चला! वेदविहित शुभकर्म करो और यह समझो कि ये कर्म मेरे नहीं हैं और मैं इनका कर्ता नहीं हूँ। ज्ञानाग्नि द्वारा सारे कर्मों को भस्म कर डालो। मुझे और तुम्हें ममता तथा अहंकार से रहित होकर कर्म करना चाहिए। श्रेष्ठ लोग जो आचरण करते हैं, पीछे वाले वैसा ही करते हैं। अतएव हम दोनों अच्छे पथ पर चलें।

सुवर्चला-द्विजश्रेष्ठ! आप कौन हैं?

श्वेतकेतु-तुमने मेरे विषय में जान ही लिया है; क्योंकि तुमने मुझे द्विज-श्रेष्ठ कहा है। फिर अब किसको पूछती हो?

सुवर्चला-*पृच्छामि हृदशायिनम्*-मैं हृदय-गुफा में विद्यमान आत्मा के लिए पूछती हूँ।

श्वेतकेतु-वह तो कुछ बोलेगा नहीं। आत्मा नाम-गोत्र से परे है। नाम-गोत्र तो बंधन हैं। जो मैं हूँ वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूँ। मन-वाणी शांत होने पर शुद्ध सत्ता मात्र है।

सुवर्चला-नाना प्रकार विरोध करने से क्या लाभ? नाना प्रकार के क्रिया-कलाप करने से आपका ज्ञान खोता जा रहा है। आप क्यों कर्म-प्रपंच में पड़े हैं?

श्वेतकेतु-श्रेष्ठ लोग जो करते हैं उसी का अनुसरण पीछे वाले करते हैं; अतएव हमारे कर्म त्याग देने पर पीछे का जनसमुदाय पथभ्रष्ट हो जायगा। फिर संस्कार-विहीन होकर मत्स्यन्यायवत बलवान् दुर्बलों को खाने लगेंगे।

इसके बाद दोनों में ज्ञान विषयक कुछ प्रश्नोत्तर चलकर बात आती है कि ब्रह्म का कहीं अनुभव नहीं होता है। इसके उत्तर में बताया गया कि देह में स्थित जीवात्मा रूप में परमात्मा एवं ब्रह्म की ही उपलब्धि होती है।

इसके बाद इस अध्याय का मुख्य विषय आता है जो पुराना है। युधिष्ठिर पूछते हैं कि मनुष्य किस उपाय से सुख पाता है, दुख का कारण क्या है और

. आंखों वाला और अंधा एक साथ कौन? दम का महत्त्व

किस उपाय से वह मुक्त होकर संसार में निर्भय होकर विचरता है?

भीष्म ने कहा 'दम' ही प्रशंसनीय है, जिससे मन-इंद्रियों पर संयम होता है। कर्म, तप, सत्य सब दम से ही स्थिर रहते हैं। दम परम पवित्र तथा तेजोमय है। मन और इंद्रियों पर संयम करने वाला पाप और भय से रहित होकर शांति पद पाता है। दमनशील सुख से सोता है, सुख से जागता है और सुख से संसार में विचरता है। उसका मन सदैव प्रसन्न रहता है। दम-हीन व्यक्ति से प्राणि जगत वैसे भयभीत होता है जैसे हिंसक प्राणी से लोग डरते हैं। ऐसे उदंड मनुष्यों को नियंत्रित करने के लिए ही राजदंड है।

कृपणता तथा उत्तेजना का न होना, संतोष, श्रद्धा, निष्क्रोधता, सरलता, निर्विवादता, निर्मलता, गुरुसेवा, पर दोष दर्शन का अभाव, जीव-दया, चुगुली का अभाव, लोक अपवाद का त्याग, सत्यभाषण, निंदा-स्तुति का त्याग, सत्संग निष्ठा, सुख-दुख की चिंता का अभाव यह सब दमनशील मनुष्य के लक्षण हैं। संयमी मनुष्य किसी के साथ वैर नहीं करता। वह सबके साथ उत्तम बरताव करता है। वह स्तुति-निंदा में सम, सदाचारी, शीलवान, प्रसन्नचित्त तथा धैर्यवान होता है। वह अपने दोषों को मिटाने में समर्थ होता है। वह आज सुखी रहता है और भविष्य में भी।

दमनशील मनुष्य अन्य प्राणियों को सुख देता है और स्वयं सुखी रहता है। जो सबका हित सोचता तथा हित करता है और किसी से द्वेष नहीं करता, वह क्षोभ-रहित गहरे सरोवर की तरह प्रज्ञातृप्त और प्रसन्न रहता है—*महाहृद इवाक्षौभ्यः प्रज्ञातृप्तः प्रसीदति* ( , )। जो न किसी का भय करता है और न स्वयं किसी को भय देता है, वह दमनशील बुद्धिमान पुरुष सबका वदनीय है।

जो सांसारिक बड़ा लाभ पाकर हर्ष में फूलता नहीं तथा संकट आने पर शोक नहीं करता, वही दमनशील और बुद्धिमान है। किसी में दोष न देखना, मन में क्षमाभाव रखना, शांति, संतोष, मीठे वचन, सत्य, दान तथा सेवा-कार्य से न थकना महान सद्गुण हैं। दुरात्मा इसका आचरण नहीं करते। वे तो काम, क्रोध, लोभ, डाह, अपनी मिथ्या प्रशंसा करना आदि दुर्गुणों से ही भरे रहते हैं। इसलिए दमनशील साधक को चाहिए कि वह काम, क्रोध, लोभादि को त्याग दे, ब्रह्मचर्य का पालन करे, आत्मलीनता की साधना में डटा रहे और मृत्युकाल की प्रतीक्षा करते हुए निर्विघ्न आत्मलीन होकर जगत में विचरण करे—*कालाकांक्षी चरेल्लोकान् निरपाय इवात्मवान्* ( , )।

## . गृहस्थ धर्म, असली तप तथा यज्ञ

भीष्म कहते हैं कि अवैदिक कर्मकांड करना स्वेच्छाचारी होना है और वैदिक कर्मकांड में भी लोलुपता है ( , )। पंद्रह दिन तथा महीना-महीना उपवास रहना शरीर को सुखाना है। विवेक से यह तप नहीं है। वस्तुतः त्याग और विनम्रता उत्तम तप है। मांस न खाय। सदैव पवित्र रहे। सज्जन तथा अतिथि का सत्कार करे। जो मनुष्य सुबह-शाम केवल दो समय भोजन करता है और बीच में कुछ नहीं खाता, वह मानो नित्य उपवास करने वाला है। जो केवल संतान के लिए पत्नी का संग करता है, सत्य बोलता और आत्मज्ञान में स्थिर रहता है, वह गृहस्थ-ब्रह्मचारी है। जो मांस नहीं खाता और दान करता है, वह सदैव पवित्र है। जो माता-पिता, कुटुंबियों तथा अतिथियों को खिलाकर खाता है वह अमृत-भोजी है। जो माता-पिता, परिवार, अतिथि तथा नौकरों के खाने के बाद अवशिष्ट भोजन करता है, उसे विघ्नसाशी अर्थात् यज्ञशिष्ट अन्न खाने वाला कहा जाता है (अध्याय )।

## मीमांसा

भोजन साथ में करे या पीछे; खास बात है परिवार, अतिथि तथा नौकरों की सेवा होना चाहिए। वैदिकों की दृष्टि से अवैदिक कर्मकांड उच्छृंखलता है। भीष्म जी कहते हैं कि वैदिक कर्मकांड करने में भी लोलुपता ही कारण है। हवन-तर्पण से स्वर्ग, पुत्र, धन आदि पाने की कामना लोलुपता ही है। केवल संतान के लिए स्त्री-पुरुष का संयोग होना गृहस्थ का महान ब्रह्मचर्य है। विरक्त तो अखंड ब्रह्मचारी होता है।

## . विभिन्न मत का सार स्वरूपज्ञान तथा प्रह्लाद का इंद्र को उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! कुछ ब्राह्मण प्रकृति और पुरुष अर्थात् जड़ और चेतन इन दो तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं। कुछ लोग जीव, प्रकृति और ईश्वर इन तीन का प्रतिपादन करते हैं और कितने विद्वान अनेक तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं। इसलिए न कहीं विश्वास किया जा सकता है और न अविश्वास। ब्रह्म भी दिखायी नहीं देता-*दृश्यते ब्रह्म नैव तत्* ( )। नाना शास्त्र हैं और उनमें विभिन्न मत हैं। मैं किस सिद्धांत को लेकर रहूँ?

भीष्म ने कहा-नाना ज्ञानी तथा चिंतक हैं। उनमें किनका मत ठीक है, यह कहना कठिन है। सबकी बातों को सुनकर जो सच लगे उसके अनुसार अपना

. विभिन्न मत का सार स्वरूपज्ञान तथा प्रह्लाद का इंद्र को उपदेश

आचरण करे। मैं पुरानी बात बताता हूँ। एक समय हिमालय पर्वत के पास पांच हजार ऋषियों की सभा हुई। उसमें कोई कहता कि संसार ध्रुव है, अनादि-अनंत है। कोई कहता कि जगत को ईश्वर ने बनाया है। कोई कहता कि जगत के लिए ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है और न वह है। कुछ लोग कहते कि जगत का कोई प्राकृतिक कारण नहीं है और कुछ लोग कहते कि जगत की सत्ता है ही नहीं। कोई ब्राह्मण स्वभाव को, कोई कर्म को, कोई पुरुषार्थ को, कुछ लोग देव को और कुछ लोग स्वभाव, कर्म आदि सबको जगत के कारण बताते थे। सब विद्वान थे और एक दूसरे को परास्त करने में तत्पर थे। फिर भारी वाद-विवाद हुआ। कितने लोग तो एक दूसरे के दंड-कमंडलु पटकने लगे। (अच्छा यह हुआ कि दंड-मुंड सम्मेलन नहीं हुआ!)

इसके बाद सब शांत हुए और सभी श्रेष्ठ लोगों ने वसिष्ठ जी से कहा- आप ही हमें सनातन तत्त्व का उपदेश कीजिए। वसिष्ठ ने कहा-दादा! मैं सनातन तत्त्व के विषय में कुछ भी नहीं जानता। तब सब लोगों ने नारद से कहा कि आप ही इसके विषय में बताइए। नारद ने कहा कि मैं नहीं जानता। कोई निष्पक्ष ही अमृततत्त्व का उपदेश दे सकता है। अंततः सब सनत्कुमार के पास गये और अपनी समस्या रखी। सनत्कुमार ने कुछ भावनात्मक बातें कहीं। इसके बाद कहा-आत्मा ही परमात्मा है। आत्मज्ञानी न मोह में पड़ता है और न क्षीण होता है। “वह अमृतात्मा न धर्मी है, न अधर्मी है। वह निर्द्वंद्व तथा ईर्ष्या-शून्य है। इस तत्त्व का ज्ञानी निस्संदेह ज्ञान से तृप्त होकर सुखपूर्वक सोता है।” यथा-

*नैव धर्मी न चाधर्मी द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।*

*ज्ञानतृप्तः सुखं शेते ह्यमृतात्मा न संशयः अध्याय*

ऊपर का विषय दो सौ बाइस ( 202 )वें अध्याय का पहला हिस्सा है जो प्रक्षिप्त होने से नंबर रहित श्लोकों का है। आगे के हिस्से के श्लोकों में नंबर हैं जो पहले की रचना है। उसका विषय इस प्रकार है-

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! कर्म-फल मिलता है, यह अटल है; परंतु क्या जीव कर्मों का कर्ता है? भीष्म ने कहा-पुराना इतिहास है, प्रह्लाद और इंद्र के संवाद रूप में इस प्रकार बात आती है। प्रह्लाद की कहानी क्या थी, इसको पहले लें-

प्रह्लाद जी सब तरफ से पूर्ण अनासक्त थे, उनके सारे मल धुल गये थे। वे कुलीन और बहुश्रुत विद्वान थे। वे अहंकार-शून्य, धर्म-मर्यादा के पालन में दृढ़ प्रतिज्ञ, शुद्ध सतोगुण में स्थित, अपनी निंदा-स्तुति में समान, मन-इंद्रिय पर

स्ववश, एकांतवासी, संसार की विनश्वरता को निरंतर देखने वाले, प्रिय-अप्रिय स्थिति प्राप्ति में सम, मिट्टी के ढेले और स्वर्ण-खंड में समानभाव वाले, आत्मज्ञान में ध्यान-निमग्न, धीर, आत्म तत्त्व में दृढ़, सत्यता को आर-पार देखने वाले, बहुज्ञ, सब में समदर्शी और आत्मस्ववश थे।

इंद्र ने उनके निकट जाकर पूछा-दैत्यराज! संसार में जिन गुणों के कारण मनुष्य सम्मान पा सकता है वह सब आप में हैं। आप बालक के समान राग-द्वेष से रहित, सरल, आत्मस्थ तथा प्रशांत हैं। आप किसे आत्मज्ञान का श्रेष्ठ साधन मानते हैं? आप रस्सियों में बांधे गये, अपने राज्य से च्युत होकर शत्रु के अधीन हो गये और अपनी राज्य-लक्ष्मी से वंचित हो गये। ऐसी दुखद स्थिति में पड़कर भी आप शोक नहीं करते हैं। आप निश्चिंत हैं। आपकी यह दिव्य स्थिति आत्मज्ञान के कारण है कि धैर्य के कारण?

प्रह्लाद ने कहा-देवराज इंद्र! जो मनुष्य प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं समझता है उसी को जड़ता, चिंता तथा व्यथा होती है। जिसको आत्मसाक्षात्कार हो गया है, वह कभी चिंता-शोक में नहीं पड़ता। भाव और अभाव स्वभाव से ही होते हैं। उनमें मनुष्य का पुरुषार्थ काम नहीं देता। मनुष्य का प्रयत्न न होने से वह कर्ता नहीं हो सकता। परंतु उसे अपने में कर्ता का अभिमान होता है। मेरा मत है कि जीव को कर्ता मानना अज्ञान है। यदि मनुष्य कर्ता होता, तो उसका पुरुषार्थ कभी विफल नहीं होता। परंतु देखा जाता है कि सफलता के लिए किये जाते हुए काम में असफलता होती है। मनुष्य लाभ के लिए काम करता है, परंतु उसकी हानि होती है। इसलिए पुरुषार्थ की प्रधानता कहां रही? अतएव लाभ-हानि होना स्वभाव के अधीन है। कितने सुंदर तथा बुद्धिमान लोग धन की प्राप्ति के लिए कुरूप और बुद्धिहीन मनुष्य का आश्रय पकड़ते हैं। अच्छे और बुरे सारे गुणों का कारण स्वभाव है; अतएव अभिमान करना व्यर्थ है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि सब कुछ स्वभाव से ही प्राप्त होता है। मेरी आत्मनिष्ठ बुद्धि भी इसी विचार का समर्थन करती है।

सुख-दुख प्राप्ति में लोग कर्म ही कारण मानते हैं। जैसे कौआ कहीं गिरे हुए भात को खाता है और कांव-कांव करके अन्य कौओं को भी सूचित करता है कि यहां भात गिरा है। इसी प्रकार सारे कर्म स्वभाव की ही सूचना देते हैं। जो मनुष्य केवल विकारों एवं कार्य-पदार्थों को ही जानता है उनकी प्रकृति एवं स्वभाव को नहीं जानता है, वही अविवेकवश मोह तथा अभिमान करता है। जो समस्त कार्य-पदार्थों का कारण प्रकृति को जानता है वह मोह-शोक नहीं

. विभिन्न मत का सार स्वरूपज्ञान तथा प्रह्लाद का इंद्र को उपदेश

करता। सभी भाव स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा समझने वाला अभिमान-रहित हो जाता है।

इंद्र! मैं धर्म का स्वरूप और प्राणियों की अनित्यता को जानता हूँ। इसलिए मैं समझता हूँ कि सारा दृश्य नाशवान है, इसलिए मैं मोह-शोक नहीं करता। मैं प्राणियों का उत्पत्ति-विनाश सदा देखता रहता हूँ, इसलिए मैं ममता, अहंकार तथा कामनाओं को छोड़कर, निर्बंध, आत्मनिष्ठ तथा असंग रहकर सब समय आनंदित रहता हूँ। मैं शुद्ध प्रज्ञा से संपन्न, इंद्रियजित, तृष्णारहित तथा कामना-हीन हूँ। मैं 'पश्यतम् लोकम् अव्ययम् ( , )' सदैव अविनाशी आत्मा पर ही लक्ष्य रखता हूँ। वही मेरा लोक है। इसलिए मैं दुःखहीन हूँ। जड़ प्रकृति और उसके विकार-कार्य-पदार्थों पर न मेरा राग है और न द्वेष है। मैं न किसी को अपना वैरी मानता हूँ और न तो अपना मित्र। न मुझे स्वर्ग जाने की इच्छा है, न नरक जाने की और न इस मृत्युलोक में रहने की इच्छा है। अब मेरे लिए न ज्ञान-विज्ञान शेष रहा और न कुछ जानना बाकी रहा।

जिस साधन से उपर्युक्त दिव्यस्थिति प्राप्त होती है, वह है सरलता, सावधानी, बुद्धि की निर्मलता, मन की स्थिरता तथा बड़े-बूढ़ों की सेवा। जब उपर्युक्त सद्गुणों से चला जाता है, तब स्वभाव से ही ज्ञान प्राप्त होता है, स्वभाव से ही शांति मिलती है और जो कुछ शुभ उपलब्धि देखते हो वह सब स्वभाव से ही प्राप्त होती है।

उपर्युक्त बातें सुनकर देवेन्द्र आश्चर्यचकित तथा प्रमुदित हो गये और दैत्यराज प्रह्लाद की पूजा करके तथा उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये (अध्याय )।

## मीमांसा

ऊपर बताया गया कि सब कुछ स्वभाव से होता है, परंतु किसके स्वभाव से होता है? उत्तर है कि मनुष्य को अपने किये हुए कर्मों के स्वभाव से ही फल मिलता है, कोई व्यक्ति-ईश्वर नहीं देता है। यह ठीक है कि मनुष्य अपने कर्तापन का अभिमान न करे, परंतु कर्ता तो वही है। वह जो करेगा, वह भरेगा। यदि अधिक भोजन पेट में डालेगा तो अधिक भोजन के स्वभाव से उसको कष्ट होगा और यदि संतुलित भोजन करेगा, तो उस संतुलन के स्वभाव से उसको सुख मिलेगा। मनुष्य के प्रयत्न में कभी-कभी असफलता होती है, तो उसमें अदृष्ट प्रारब्ध तथा वर्तमान का वातावरण या असावधानी आदि कारण होते हैं। अधिक प्रयत्न तो सफल ही होते हैं। जो प्रयत्न असफल दिखता है वह भी

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

सफलता की तरफ अदृश्य पदक्रम है। अब्राहम लिंकन अनेक बार चुनाव में असफल होकर फिर अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर चुने गये। प्रह्लाद जी भी शांति प्राप्ति के लिए प्रयत्न बताते ही हैं-“इंद्र! सरलता, अ-प्रमाद, बुद्धि की निर्मलता, चित्त की स्थिरता और वृद्धों की सेवा करने से मनुष्य को महत्-पद-शांति की प्राप्ति होती है।” यथा-

*आर्जवेनाप्रमादेन प्रसादेनात्मवत्तया।*

*वृद्धशुश्रूषया शक्र पुरुषो लभते महत् ( , )*

मनुष्य जो कुछ करता है उस कर्म के स्वभाव से उसको फल मिलता है। इसके लिए किसी ईश्वर की कल्पना व्यर्थ है।

दैत्यवंशी प्रह्लाद की देववंशी इंद्र पूजा करते हैं और उनसे ज्ञान सीखते हैं। यह भारतीय परंपरा की उदारता का उदाहरण है।

## . इंद्र की बाल-बुद्धि पर बलि की फटकार, माया क्षणभंगुर है

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट तथा कालदंड से पिसा हुआ राजा किस बुद्धि से संसार में रहे? भीष्म ने कहा-इसके लिए इंद्र और बलि का पुराना संवाद इतिहास के रूप में बताया जाता है।

एक समय इंद्र ने सभी असुरों पर विजय किया। इसके बाद उन्होंने ब्रह्मा जी के पास जाकर उनसे पूछा-ब्रह्मन्! दान देते समय जिनका भंडार कभी खाली नहीं होता था, उस राजा बलि को मैं खोजता हूँ, परंतु वह कहीं मिल नहीं रहा है। आप मुझे बलि का पता बताने की कृपा करें। एक समय था जब मानो बलि ही वायु बनकर बहता था, वरुण बनकर जल बरसाता था, सूर्य-चंद्र बनकर प्रकाश फैलाता था, अग्नि बनकर ताप देता था, वह बलि कहीं दिखायी नहीं देता। ब्रह्मन्! मुझे बलि का पता बताइए।

ब्रह्मा ने कहा-इंद्र! तुमने बलि का पता पूछकर अच्छा काम नहीं किया है; किंतु पूछ ही लिया है तो मैं झूठ नहीं बोलूंगा। मैं बलि का पता बताता हूँ। ध्यान दो, किसी सूने घर में जहां गाय, ऊंट, गधा या अश्व जाति के पशुओं में कोई श्रेष्ठ जीव दिखे, उसे बलि समझना।

इंद्र ने कहा-यदि बलि मिल जाय, तो मैं उसे मार डालूँ कि न मारूँ?

ब्रह्मा ने कहा-खबरदार! बलि को मारना नहीं। हां, उनसे इच्छानुसार उचित व्यवहार करने के विषय में प्रश्न कर सकते हो।

. इंद्र की बाल-बुद्धि पर बलि की फटकार, माया क्षणभंगुर है

इंद्र बलि की खोज में निकला। एक शून्य घर में एक गधा बंधा था। इंद्र ने समझ लिया कि यही बलि है। इंद्र ने कहा-दानव! तुम गधा बनकर भूसी खा रहे हो। यह तुम्हें नीची योनि प्राप्त हुई है। तुम्हें इसके लिए क्या शोक नहीं होता है? एक दिन तुम्हारा सर्वत्र दबदबा था। देवता भी तुम्हारा मुंह जोहते थे। तुम्हारे राज्य में सब सुखी थे। तुम्हारा सर्वत्र वर्चस्व था। क्या आज तुम गधा बनकर शोक नहीं करते हो? तुम एक दिन राजसिंहासन पर स्वर्ण-छत्र के नीचे बैठते थे और तुम्हारे सामने सहस्रों देवांगनाएं और गंधर्व नाचते-गाते थे, तुम बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, अतुल दान करते थे। आज तुम गधे की योनि में पड़े कैसा सोचते हो?

बलि ने कहा-इंद्र! तुमने जो यहां मूर्खतापूर्ण बात कही है, यह मेरे लिए आश्चर्यजनक है। तुम देवों के राजा हो। तुम्हें ऐसा दुखदायी वचन नहीं कहना चाहिए। इस समय मैं राज्यलक्ष्मी से वंचित हूं और तुम देवताओं के राजा हो। ऐसी दशा में तुम मेरे सामने अपनी प्रशंसा के गीत गाना चाहते हो, यह तुम्हारे कुल और यश के लिए ठीक नहीं है। जो कृतप्रज्ञ एवं शुद्धबुद्धि हैं, ज्ञान से तृप्त, क्षमाशील तथा विवेकी हैं, वे दुख पड़ने पर शोक नहीं करते और समृद्धि पाने पर हर्ष में फूल नहीं जाते। इंद्र! तुम अपनी मलिन बुद्धि के कारण मेरे सामने आत्मप्रशंसा कर रहे हो। जब तुम भी मेरे जैसी दशा में हो जाओगे, तब ऐसा नहीं कहोगे (अध्याय )।

इंद्र ने कहा-दैत्यराज बलि! पहले तुम हजारों वाहनों और अनुगामियों से घिरकर चलते थे और देवताओं को कुछ नहीं समझते थे। आज तुम्हें इस दशा में पहुंचकर शोक नहीं होता?

बलि ने कहा-इंद्र! कालचक्र स्वाभाविक परिवर्तनशील है। इसलिए मैं सब कुछ अनित्य समझकर शोक नहीं करता हूं। प्राणियों के सारे शरीर नाशवान हैं। जीवन तथा शरीर एक साथ पैदा होते हैं, एक साथ बढ़ते हैं और एक साथ नष्ट होते हैं। मैं शरीर की अनित्यता और आत्मा की अमरता और असंगता को समझता हूं, तो मुझे क्या चिंता हो सकती है? जैसे जल-प्रवाह की अंतिम गति समुद्र है, वैसे देहधारियों की अंतिम परिणति मृत्यु है। जो इस तथ्य को ठीक से समझता है, वह किसी स्थिति में दुखी नहीं होता। नष्टबुद्धि लोग ही प्रतिकूल परिस्थिति में दुखी होते हैं। निर्मल मन वाला सब समय प्रसन्न रहता है। जन्म और मरण जीवों के कर्मों से ही होते हैं। शरीर जड़ तत्त्वों का कार्य है। उसके लिए शोक तथा विलाप की क्या आवश्यकता? विद्वान-अविद्वान, बुद्धिमान-निर्बुद्धि, सौभाग्यशाली-अभाग, सुंदर-कुरूप, सबको काल अपना ग्रास बनाता

है। जो काल से जल चुका होता है, उसी को पीछे आग जलाती है। जिसको काल पहले मार देता है, वही पीछे दूसरों से मारा जाता है। जो वस्तु काल से नष्ट हो गयी रहती है, वही नष्ट होती है। जिसका मिलना पहले से निश्चित है, वही वस्तु मिलती है। काल-सागर में कोई द्वीप नहीं होता जिस पर चढ़कर उससे बचा जा सके। यदि काल प्राणियों का विनाश न करता तो मुझे हर्ष होता। अपनी शक्ति पर गर्व होता और क्रूर काल पर मुझे क्रोध होता। इंद्र! तुम मेरी निंदा करने, मुझे चिढ़ाने आये हो! काल प्रबल है। तुम गर्व न करो। पहले मेरे कुपित होने पर जगत भयभीत हो जाता था। आज मैं गधा होकर सूने घर में बंधा हूँ। इंद्र! तुम गर्व न करो। माया की चीजों की कभी वृद्धि होती है और कभी क्षय होता है। यह संसार का सनातन स्वभाव है। मैं इस तथ्य को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम जगत की नश्वरता को समझो। विस्मय मत करो। प्रभुता और प्रभाव अपने अधीन नहीं है—“प्रभवश्च प्रभावश्च नात्मसंस्थः कदाचन ( , )।”

इंद्र! तुम्हारी जैसी बाल-बुद्धि पहले थी, वैसी आज भी है। इस पर ध्यान दो और नैष्ठिक बुद्धि अपनाओ। यह तुम जानते हो कि एक दिन देवता, मनुष्य, पितर, गंधर्व, नाग और राक्षस मेरे अधीन थे। मैं जहां रहता था, मेरे शत्रु उस दिशा को सिर झुकाते थे। परंतु मैं आज अपनी दशा को लेकर थोड़ा भी दुखी नहीं हूँ। एक उच्च कुल में उत्पन्न दर्शनीय एवं प्रतापवान मनुष्य अपने मंत्रियों के साथ दुखपूर्वक जीवन बिताता है, ऐसा उसका होनहार ही था। एक मूढ़ तथा नीच मनुष्य मंत्रियों के साथ ऐश्वर्य भोगते हुए देखा जाता है, क्योंकि वैसा ही उसका होनहार था। इंद्र! एक सदाचारी स्त्री विधवा हो जाती है, दूसरी दुराचारिणी स्त्री सधवा रहती है। इंद्र! तुम आज समृद्धशाली भूपति हो और मैं आज राज्यलक्ष्मी से वंचित गधे के रूप में हूँ। इसमें न हमारी विशेषता है और न तुम्हारी। समृद्धि और निर्धनता बारी-बारी सब पर आती है। इंद्र! तुम आज मेरे सामने गरज रहे हो। यदि आज काल मेरे विपरीत न होता, तो मैं आज तुम्हें मुक्के मार-मारकर चूर्ण कर देता। वज्र चलाने की भी आवश्यकता न समझता।

आज मेरा समय बल दिखाने का नहीं अपितु शांत रहने का है। काल सब को उठाता और गिराता है। इंद्र! न मैं कर्ता हूँ न तुम कर्ता हो और न कोई अन्य कर्ता है। काल ही सबका बारी-बारी उपभोग करता है। वेदवेत्ता कहते हैं कि महीना और पक्ष काल का शरीर है, दिन-रात उसके वस्त्र हैं, ऋतुएं उसकी इंद्रियां हैं और वर्ष मुख है। वह काल आयु स्वरूप है। कुछ मनीषीगण अपने

. बलि और नमुचि के कल्याणकारी प्रवचन

बुद्धिबल से कहते हैं कि सब कुछ काल नाम से ब्रह्म है। काल को ब्रह्म ही समझना चाहिए। यह काल महासागर के समान है। उसका न आदि है और न अंत। वह क्षर भी है और अक्षर भी है। तत्त्वदर्शी पुरुष कहते हैं कि काल रूप-रहित होकर भी सबको घुमाता है। काल-भगवान सभी प्राणियों में उलटफेर करता है। लोग काल का महत्त्व नहीं समझ पाते। काल के द्वारा पराजित हुआ व्यक्ति कुछ नहीं कर पाता। इंद्र! काल के फंदे से बचकर भागने का कोई उपाय नहीं है। न भागकर और न खड़ा रहकर उसके चंगुल से छूटा जा सकता है। मनुष्य का मन और इंद्रियां काल का अनुभव नहीं कर पातीं। कुछ लोग काल को अग्नि कहते हैं और कुछ लोग प्रजापति कहते हैं। कुछ लोग काल को ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाह्न तथा अपराह्न कहते हैं। उसी को विद्वान मुहूर्त कहते हैं। इंद्र! सारा जगत काल के अधीन है। तुम्हारे-जैसे हजारों ऐश्वर्यवान इंद्र समाप्त हो चुके हैं। तुम अपने को बहुत बड़ा गिनते हो, परंतु समय आने पर काल तुम्हें भी परास्त कर देगा। सारा संसार काल के वश में है। अतएव तुम बहुत उछलो-कूदो मत, शांत रहो। मैं और तुम तथा मेरे-तुम्हारे पूर्वज भी काल की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। तुम प्राप्त राज्यलक्ष्मी को समझते हो कि यह तुम्हारे पास स्थिर रहेगी; परंतु यह तुम्हारा गुमान मिथ्या है। लक्ष्मी एक जगह बंधकर नहीं रहती। इंद्र! तुमसे भी बड़े-बड़े लोगों के पास यह लक्ष्मी रह चुकी है। देवेश्वर! यह चंचला लक्ष्मी मुझे छोड़कर तुम्हारे पास गयी है। इंद्र! खबरदार, अब पुनः तुम ऐसा घमंडी बरताव न करना। तुम्हें घमंड छोड़कर शांत हो जाना चाहिए। यह लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर किसी अन्य के पास चली जायगी (अध्याय )।

### मीमांसा

इंद्र-बलि का रूपक महत्त्वपूर्ण है। इसमें तथ्य महत्त्वपूर्ण है। झोपड़ी से महल तक लक्ष्मी चंचल है। मनुष्य उसका मोह त्यागकर ही संतुष्ट रह सकता है।

### . बलि और नमुचि के कल्याणकारी प्रवचन

इंद्र ने देखा कि बलि के शरीर से एक चमचमाती हुई सुंदर स्त्री निकल आयी है। इंद्र ने बलि से पूछा-यह कौन है?

बलि-न यह असुर-कुल की है, न देव-कुल की है और न मानव-कुल की ही है। तुम इसे जानना चाहते हो तो इसी से पूछो अथवा न पूछो, जैसा तुम्हारा मन हो, वैसा करो।

इंद्र ने सुंदरी से पूछा-तुम कौन हो?

लक्ष्मी ने कहा-मुझे न विरोचन जानते हैं और उसका पुत्र बलि जानता है। लोग मुझे 'दुःसहा' कहते हैं और कुछ लोग मुझे 'विधित्सा' कहते हैं। लोग मुझे भूति, लक्ष्मी और श्री भी कहते हैं। मुझे न तुम जानते हो और न संपूर्ण देवता। जिसका सहना कठिन हो वह दुःसहा है और विधित्सा का अर्थ है तृष्णा।

इंद्र-दुःसहे! तुम बलि के शरीर में निवास करती थी, अब तुम उससे निकलकर मेरा या बलि का कल्याण करना चाहती हो?

लक्ष्मी-कोई धाता-विधाता मेरा प्रेरक नहीं है। काल ही मेरा प्रेरक है। काल ने मुझे आदेश दिया है कि बलि का साथ छोड़ दो। इंद्र तुम काल की अवहेलना नहीं करना।

इंद्र-तुमने बलि का त्याग क्यों किया है, और मेरा त्याग क्यों नहीं करोगी?

लक्ष्मी-मैं सत्य, दान, व्रत, तप, पराक्रम और धर्म में निवास करती हूँ। राजा बलि ने इनको छोड़ दिया है। बलि पहले सत्यवादी, पवित्र लोगों के हितैषी तथा जितेंद्रिय थे। ये पर-सेवा करते थे। परंतु अब ये अपना ही स्वार्थ साधने लगे। अतएव मैंने इनको छोड़ दिया है। इंद्र! तुम भी सावधान रहकर मुझे धारण करना, अन्यथा तुम्हारी भी बलि-जैसी दशा होगी।

लक्ष्मी को कोई भी देवता या मनुष्य नहीं धारणकर सकता था। इसलिए उसने अपना एक पैर पृथ्वी पर, दूसरा पैर जल में, तीसरा पैर अग्नि में और चौथा पैर पवित्रात्माओं के भक्त सत्यवादी-सदाचारियों में रखा। तात्पर्य है कि लक्ष्मी के पैर प्रकृति में और सदाचारियों में जमते हैं।

इसके बाद इंद्र उत्तर दिशा को चले गये और बलि दक्षिण दिशा को चले गये (अध्याय )।

भीष्म ने कहा-इसी तरह दैत्यराज नमुचि राज्यलक्ष्मी से वंचित हो गये थे, तो भी वे प्रशांत महासागर के समान क्षोभ-रहित रहे। वे कालचक्र में मनुष्यों के होने वाले अभ्युदय और पराभव को समझते थे। देवराज इंद्र उस समय जाकर नमुचि से बोले-नमुचि! तुम राज्यलक्ष्मी से वंचित हो गये हो। तुम्हें इसको लेकर शोक नहीं होता?

नमुचि-इंद्र! यदि शोक को त्यागा न जाय, तो उससे मन और शरीर जलता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं। शोक द्वारा विपत्ति को दूर करने में कोई सहयोग नहीं मिलता। मैं शोक नहीं करता, क्योंकि संपूर्ण ऐश्वर्य नाशवान है। संताप करने से

. बलि और नमुचि के कल्याणकारी प्रवचन

सौंदर्य नष्ट होता है, कांति फीकी पड़ जाती है तथा आयु और धर्म क्षीण होते हैं। किसी के दुर्व्यहार से भी यदि विपत्ति आयी हो तो भी उसे मन से हटा दे और हृदय में स्थित कल्याणमय आत्मा का चिंतन करे— “*ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता* ( , )।” मनुष्य जब-जब आत्मचिंतन करता है, तब-तब वह प्रसन्न रहता है। संसार में एक स्वयंभू शाश्वत नियम है। इसी से सब होता है। जो मिलना है वह मिलकर रहता है। होनहार कोई टाल नहीं सकता। मनुष्य अपने मन के अनुसार नहीं पाता है, अपितु जो होनी है वही होती है। जो कालक्रमानुसार सुख-दुख से आंदोलित होता है, वह समझदार नहीं है। दुखी होने का कारण अहंकार है। ऋषि, देवता, बलवान असुर, वेदों के प्रकांड पंडित, वनवासी मुनि, इनमें से किनके ऊपर विपत्तियां नहीं आतीं? परंतु जिन्हें सत-असत का विवेक है वह न भ्रम में पड़ता है और न मोहित होता है।

विवेकवान न कभी क्रोध करता है, न कहीं आसक्त होता है, न प्रतिकूलता आने पर व्याकुल होता है और न प्रिय वस्तु पाकर विशेष हर्षित होता है। वह आर्थिक संकट या किसी भी कठिनाई में चिंतित एवं शोकग्रस्त नहीं होता। जो अर्थ सिद्ध होने पर हर्ष में फूलता नहीं, संकट आने पर धैर्य और विवेक को खोता नहीं, जो सुख-दुख तथा दोनों के बीच की दशा में समान भाव से रहकर शांत तथा प्रसन्न रहता है, वही महापुरुष महान कार्य-भार को सम्हाल सकता है। चाहे जैसी दशा आवे, सब में दुख न मानकर प्रसन्न रहना चाहिए। विवेकवान संताप को मन से निकाल देता है।

“ न ऐसी सभा है, न सत्पुरुषों की परिषद् है और न कोई जनसमाज है, जिसे पाकर मनुष्य पूर्ण निर्भय हो जाय। प्रज्ञावान धर्मतत्त्व का अवगाहन करके उसी का आचरण करता है, वही धुरंधर माना गया है।” विवेकवान मनुष्य किसी भी स्थिति में मोह एवं भ्रम में नहीं पड़ते। जो वस्तु नहीं मिलना है, वह मंत्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, पुरुषार्थ, शील, सदाचार और धन-संपत्ति से भी नहीं मिलती। फिर ऐसी वस्तु के लिए शोक क्यों किया जाय? मैं प्रारब्ध पर संतोष रखता हूं, फिर मृत्यु मेरा क्या करेगी? जो प्रारब्ध में मिलने वाला है वह मिलेगा ही। उसे जहां जाना है वहां जाता है और जो सुख-दुख मिलना है वह मिलेगा। जो उपर्युक्त बातें समझता है, वही सब समय निश्चिंत, सुखी और सच्चा धनवान

---

. न तत्सदः सत्परिषत् सभा च सा प्राप्य यां न कुरुते सदा भयम् ।

धर्मतत्त्वमवगाह्य बुद्धिमान् योऽभ्युपैति स धुरंधरः पुमान्

( महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक )

है (अध्याय )।

## मीमांसा

बलि की देह से लक्ष्मी नाम की स्त्री निकली, यह रूपक मात्र है। वस्तुतः राज्य-ऐश्वर्य रूप लक्ष्मी बलि के पास नहीं रह गयी। बलि और नमुचि दोनों के प्रवचन कल्याणकारी हैं।

### . ग्रहण और त्याग करने योग्य आचरण

आगे दो सौ सत्ताइस ( )वां अध्याय है जिसमें एक सौ उन्नीस ( ) श्लोक हैं और इसमें इंद्र और बलि का संवाद है और विषय भी वही है जो पीछे चौहत्तर ( )वें संदर्भ में आ गया है।

आगे दो सौ अट्ठाइस ( )वां अध्याय है, जिसमें इंद्र ने लक्ष्मी से पूछा है कि तुमने इस समय दैत्यों का साथ क्यों छोड़ दिया? लक्ष्मी ने कहा कि पहले दैत्य अच्छे आचरण के थे, इसलिए मैं उनके साथ थी, किंतु अब उनका आचरण खराब हो गया है, इसलिए मैंने उनका साथ छोड़ दिया है। इसका विवरण इस प्रकार है-

लक्ष्मी ने कहा-पहले दैत्य दान, अध्ययन तथा पर-सेवा में लगे रहते थे। देव, पितर तथा अतिथियों की सेवा करते थे। वे सत्य का पालन करते थे। घर साफ रखते थे। अपनी पत्नी का मन प्यार से जीतकर रखते थे। उनमें श्रद्धा थी। वे क्रोध-रहित थे। वे दूसरों के सद्गुणों में दोष नहीं निकालते थे। वे ईर्ष्या-रहित थे। वे परिवार, मंत्री तथा आश्रयीजनों का भरण-पोषण करते थे। वे दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा नहीं करते थे। वे धीर थे, दूसरे की समृद्धि से जलते नहीं थे। वे दान करते, कर आदि के द्वारा धन-संग्रह करते तथा आर्यजनोचित व्यवहार करते थे। वे दयालु थे। वे सरल तथा भक्ति भाव संपन्न थे। वे मन-इंद्रियों पर विजयी थे। वे कृतज्ञ, मधुर भाषी, दूसरों को सम्मान देने वाले, लज्जाशील एवं व्रत-नियम के पालक, अंतर-बाहर शुद्ध, विश्वासपात्र तथा वेदाध्ययन परायण थे। वे ब्राह्म मुहूर्त्त में जग जाते थे। दिन में नहीं सोते थे। वे रात में दही तथा सत्तू नहीं खाते थे। वे सदैव धर्म की चर्चा में लगे रहते थे। प्रतिग्रह से दूर रहते थे। वे रात के आधे भाग में ही सोते थे। वे यज्ञ करते थे, ब्राह्मणों को दान देते थे।

## . ग्रहण और त्याग करने योग्य आचरण

वे कृपण, अनाथ, वृद्ध, रोगी और स्त्रियों पर दया करते थे। उन्हें अन्न और वस्त्र देते थे। वे त्रस्त, दुखी, उद्विग्न, भयभीत, व्याधिग्रस्त, दुर्बल और पीड़ित की सहायता करते थे। वे हिंसा से रहित थे। वे परस्पर मैत्री रखते तथा गुरुजनों तथा वृद्धों की प्रसन्न मन से सेवा करते थे। अकेले उत्तम भोजन नहीं करते थे। दूसरों को देकर खाते थे। परस्त्री से सदैव दूर रहते थे। सब प्राणियों में समता रखते थे। वे आकाश में, पशुओं में, विपरीत योनि में और पर्व के अवसरों पर वीर्य-त्याग नहीं करते थे। बुद्धिमत्ता, सरलता, उत्साह, अहंकार-शून्यता, मैत्री, क्षमा, सत्य, दान, तप, शौच, करुणा, कोमल वचन, अद्रोह भाव आदि सद्गुण उनमें विराजते थे। निद्रा, तंद्रा, अप्रसन्नता, दोषदृष्टि, अविवेक, अप्रीति, विषाद और कामना आदि दोषों से वे मुक्त थे। इस प्रकार उच्च सद्गुणसंपन्न दानवों के पास सृष्टिकाल से अब तक मैं रहती आयी हूँ।

समय का उलटफेर हुआ। उनके जीवन में बदलाव आ गया। मैंने देखा कि उनमें धर्म नहीं रह गया। दैत्य काम और क्रोध के अधीन हो गये। सभा में बैठे वृद्ध दैत्य जब कोई निर्णय देते, तब गुणहीन दैत्य उनकी बातों में दोष निकालते और उनकी हंसी उड़ाते। ऊंचे आसन पर बैठे रहते, बड़ों के आने पर न उठकर खड़े होते और न अभिवादन करते। पिता के रहते पुत्र मालिक बन बैठता। वे शत्रुओं के सेवक बनकर निर्लज्जतापूर्वक उसका बखान करते। निंदित कर्म से धन पैदा करते। रात में हल्ला करते। उनके यहां अग्निहोत्र घट गये। पुत्र पिताओं से तथा स्त्रियां पतियों से दुर्व्यवहार करने लगीं। वे न बड़ों का आदर करते और न बच्चों का ठीक से लालन-पालन करते। परिवार, पितर, अतिथियों को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन करने लगे। दैत्य और उनके रसोइए पवित्राचार का त्यागकर दिये। वे भोजन-सामग्री को बिना ढके ही छोड़ देते हैं। उनके घरों में अन्न के दाने बिखरे रहते हैं और उन्हें कौए, चूहे आदि खाते तथा गंदगी फैलाते रहते हैं। वे दूध को बिना ढके छोड़ देते हैं और दही को जूठे हाथों से छू लेते हैं।

घर में कुदाली, दरंती, हंसिया, पिटारे, बरतन तथा अन्य सामान बिखरे पड़े रहते हैं, परंतु घर की स्त्रियां उन्हें सम्हालकर व्यवस्थित नहीं रखती हैं। उनके घर तथा गांव की चहारदीवारी टूट या गिर जाती है, परंतु वे उनकी मरम्मत नहीं करते। वे घर में पशु तो बांधे रहते हैं, परंतु चारा-पानी से उनकी ठीक से सेवा नहीं करते। बच्चे, परिवार के लोग तथा सेवक देखते रह जाते हैं, और दैत्य लोग स्वयं भोजन कर लेते हैं। खीर, खिचड़ी, मांस, पूआ, पूरी आदि वे केवल अपने खाने के लिए बनवाते हैं और वे अधिक मांस-लोभी हो गये हैं। वे सूरज

उगने तक सोते हैं। वे सुबह को रात ही मानते हैं। उनके घरों में रात-दिन कलह मचा रहता है।

वे श्रेष्ठ लोगों का आदर तथा सेवा नहीं करते। वे आश्रमवासी तथा महात्माओं से द्वेष करते हैं। अब उनमें वर्णसंकरता फैल गयी है। किसी में पवित्रता नहीं रह गयी है। वे वेदविद्वान को तथा जो वेद की एक ऋचा भी नहीं जानते, दोनों को बराबर मानते हैं। उनके घर की सेविकाएं सुंदर अलंकार धारणकर चलती-फिरती हुई या खड़ी होकर पुरुषों पर कटाक्ष करती हैं। क्रीड़ा, रति और विहार के समय उनकी स्त्रियां पुरुष का वेष बनातीं और पुरुष स्त्रियों का वेष बनाते हैं। इस दशा में वे परस्पर मिलकर बड़ा आनंद मानते हैं।

दानवों ने जो जागीर ब्राह्मणों को दी थी, अब उनके लड़के ब्राह्मणों से उसे छीन लेते हैं। दानवों में जो व्यापारी हैं, वे दूसरों को ठगने में ही अपनी विशेषता समझते हैं। कुछ दानव ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना भी वेदाध्ययन शुरू कर देते हैं। कुछ लोग अवैदिक व्रत का आचरण करते हैं। शिष्य गुरु की सेवा नहीं करना चाहता। ऐसे-ऐसे गुरु हैं जो शिष्य को मित्रभाव से मानते हैं। माता-पिता जब बूढ़े हो जाते हैं, तब उनकी प्रभुता घर में नहीं रह जाती। तब वे अपने बेटों से अन्न की भीख मांगते हैं। जो वेदज्ञ तथा ज्ञान-गंभीर हैं वे खेती करने लगे हैं, और मूर्ख लोग वेदज्ञ होने का दावा करके श्राद्ध का अन्न खाने लगे हैं।

गुरु लोग रोज-रोज सबेरे शिष्यों के पास जाकर कुशल-मंगल पूछते हैं, शिष्यों को वस्त्र पहनाते हैं, उनकी वेष-भूषा संवारते हैं, और उनकी ओर से कोई निर्देश न होने पर भी उनके संदेशवाहक दूत आदि का काम करते हैं। सासु-ससुर के सामने बहुएं सेवकों पर शासन करती हैं। वे पति को भी आदेश देती हैं और सबके सामने पति को बुलाकर कहती हैं-सुनो, यह काम कर लो। पिता प्रयत्नपूर्वक पुत्र के मन की बात निभाने में लगे रहते हैं। वे पुत्रों के क्रोध से डरते हैं और अपना धन उनमें बांट देते हैं और स्वयं बड़े कष्ट से जीवन बिताते हैं। आग, चोर तथा राजा द्वारा धन का नाश या अपहरण देखकर हितैषी कहलाने वाले प्रसन्न होकर हंसी उड़ाते हैं। दैत्यगण कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी और गुरुपत्नी-गामी हो गये हैं। वे अभक्ष्य सेवी तथा दुराचारी हो जाने से कांतिहीन हो गये हैं। इंद्र! जब से दैत्यों ने सदाचार का त्यागकर दिया, तब से मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अब इनके घर में नहीं रहूंगी। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आयी हूं। तुम मेरा आदर करोगे, तो अन्य देवता भी मेरा आदर करेंगे।

देवेंद्र! जहां मैं रहूंगी, वहां अन्य आठ देवियां भी रहेंगी, जिनके नाम हैं-आशा, श्रद्धा, धृति, शांति, विजिति, संनति, क्षमा तथा वृत्ति (जया)। जो इस

. जैगीषव्य और नारद के सदगुणों का चित्रण

प्रसंग को ब्राह्मणों की सभा में पढ़ते हैं, उनकी सारी कामनाएं पूरी हो जाती हैं (अध्याय - )।

## मीमांसा

किसी विद्वान ने मनुष्यों के ग्रहण करने और त्यागने योग्य आचरण की लिस्ट यहां प्रस्तुत कर दी है। लक्ष्मी और दैत्य-दानव के रूपक ने कथन को रोचक बना दिया है। अंत में इसके पाठ से सब कामनाओं की पूर्णता लिखकर लेखक ने स्वयं सिद्ध कर दिया है कि यह पीछे का जोड़ है। श्रुतिफल ग्रंथ के बीच में आना क्षेपक का लक्षण है; क्योंकि श्रुतिफल ग्रंथ के अंत में आना चाहिए अथवा पर्व के अंत में।

भले क्षेपक हो, परंतु इसमें बहुत काम की सीख दी गयी है। सामान्य जनता को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इसका सुंदर चित्रण इस संदर्भ में आया है। यहां तक कि रात में दही और सत्तू नहीं खाना चाहिए।

## . जैगीषव्य और नारद के सदगुणों का चित्रण

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! किस शील, आचरण, विद्या और पराक्रम से मनुष्य प्रकृति-पार अविनाशी ब्रह्मपद प्राप्त कर सकता है?

भीष्म ने कहा-जो मनुष्य कम खाता है और मन-इंद्रियों को वश में रखता है, वही साधना द्वारा प्रकृतिपार अविनाशी ब्रह्मपद में स्थित होता है। इस विषय में जैगीषव्य ऋषि और असितदेवल का पुराना संवाद प्रस्तुत किया जाता है। एक बार महाप्रज्ञ तथा संपूर्ण धर्म-रहस्य जानने वाले हर्ष-अमर्ष-विजयी जैगीषव्य मुनि से असितदेवल ने पूछा-भगवन! आप अपनी निंदा-प्रशंसा में समान रहते हैं। आपको हर्ष और अमर्ष आते ही नहीं, इस समता-शांति के मूल में क्या आधार है?

जैगीषव्य ने कहा-देवल! कोई निंदा करता है या प्रशंसा अथवा हमारे सदगुणों पर परदा डालता है, इससे मेरा क्या बिगड़ता है और ऐसा करने वालों के प्रति मेरा क्या आक्षेप? कटु कहने वाले से कटु कहने की आवश्यकता नहीं है। अहित करने वाले की भी हितकामना रखना चाहिए। मुझे मारने वाले को भी मुझे नहीं मारना चाहिए। ज्ञानी भूत और भविष्य को लेकर चिंता-शोक नहीं करते। वर्तमान में प्राप्त कर्तव्य कर्म को करना चाहिए। ज्ञानी दूसरों का सहयोग करते हैं, किसी के काम में खडमंडल नहीं करते। ज्ञानी किसी के साथ अपराध

नहीं करते। उनका ज्ञान परिपक्व होता है। वे मन, वाणी तथा इंद्रियों को जीतने वाले क्रोध से पार होते हैं। वे किसी की ईर्ष्या नहीं करते। वे कभी हिंसा नहीं करते और किसी की समृद्धि देखकर जलते नहीं हैं। वे न दूसरे की निंदा करते हैं और न अधिक प्रशंसा करते हैं। कोई उनकी निंदा या प्रशंसा करे तो उनके मन में विकार नहीं आता।

वे सदैव शांत रहकर जनहित में रत रहते हैं। वे अपने हृदय की अज्ञान-ग्रंथि काटकर सर्वत्र आनंदमग्न हो विचरण करते हैं। वे न किसी को अपना मानते हैं और न अपने को किसी का मानते हैं। न वे किसी से शत्रुता करते हैं और न किसी को अपना शत्रु मानते हैं। जो धर्म-मार्ग पर चलता है, वह हर्ष-शोक-रहित होता है। धर्मभ्रष्ट मनुष्य ही हर्ष-शोक में लिप्त होता है। मैंने भी उसी धर्म-मार्ग का अनुसरण किया है, फिर मैं क्या निंदा-प्रशंसा में हर्ष-शोक करूँ?

जो लोग मेरी निंदा या प्रशंसा करके जो-जो लाभ लेना चाहें वे ले लें; किंतु उस निंदा और प्रशंसा से न मेरी कोई हानि है और न लाभ। विवेकी तत्त्वज्ञ पुरुष अपमान को अमृत के सदृश समझकर उससे संतुष्ट रहे और सम्मान को विष के तुल्य समझकर उससे डरता रहे। सभी दोषों से मुक्त पुरुष अपमानित होने पर भी आज और आगे सुख से सोते हैं, परंतु उनका अपमान करने वाला बंधन में पड़ जाता है। इंद्रियजित निष्काम पुरुष जड़ प्रकृति से परे अविनाशी ब्राह्मी स्थिति पा जाते हैं। परम गति को प्राप्त महात्मा के पद का अनुसरण देव, गंधर्व, पिशाच, राक्षस कोई नहीं कर सकता (अध्याय )।

अगले दो सौ तीस ( )वें अध्याय में श्रीकृष्ण के मुख से नारद के सद्गुण बताये गये हैं। श्रीकृष्ण उग्रसेन की जिज्ञासा होने पर उनसे नारद के गुणों को कहते हैं-नारद जी मैं शास्त्रज्ञान और चरित्रबल दोनों हैं। तन-मन को जलाने वाला अभिमान उनमें नहीं है। वे क्रोध, चपलता तथा भय से रहित हैं। वे धर्माचरण और दया करने में वीर तथा आलस्य रहित हैं। वे कामना या लोभ से अपनी बात को पलटते नहीं हैं। वे अध्यात्म शास्त्र के तत्त्व ज्ञाता, क्षमाशील, शक्तिमान, जितेंद्रिय, सरल तथा सत्यवादी हैं। वे तेज, बुद्धि, यश, ज्ञान, विनय और तपस्या में बढ़े-चढ़े हैं। वे सुशील, सुख से सोने वाले, पवित्र-आहारी, उत्तम वचन बोलने वाले तथा ईर्ष्या-रहित हैं। वे निष्छल परोपकारी हैं। वे शास्त्रों के व्याख्यान में कुशल हैं। वे सहनशील तथा किसी की अवज्ञा न करने वाले हैं। वे राग-द्वेष त्यागकर समता का बरताव करते हैं। वे सदैव प्रिय बोलते हैं। वे विद्वान होकर भी लालसा तथा शठता से दूर हैं।

. काल, सृष्टि आदि का वर्णन तथा काल-नदी से पार होने का उपाय

उनका किसी से कलह नहीं है। उनके मन में भक्ति है। उनका हृदय शुद्ध है। वे सबसे अनासक्त रहते हुए आसक्त जैसे दिखते हैं। वे न विषय-लोलुप हैं और न आत्मप्रशंसक। वे किसी की निंदा नहीं करते। वे मन को स्ववश रखते हैं और समय को व्यर्थ नहीं गंवाते। वे हर्ष-शोक-रहित लज्जाशील और सदगुणसंपन्न हैं। इसलिए वे सर्वत्र पूज्य हैं (अध्याय )।

### मीमांसा

कहानी और संवाद के बहाने मनुष्यों को धारण करने योग्य सदगुणों का वर्णन पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी है। हम मनन और आचरण करें।

## . काल, सृष्टि आदि का वर्णन तथा काल-नदी से पार होने का उपाय

आगे तीन अध्यायों में काल (समय) का स्वरूप तथा सृष्टि-उत्पत्ति-प्रलय की बात शुकदेव-व्यास के संवाद में बतायी गयी है। पंद्रह निमेष की एक काष्ठा, तीन काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात, तीस रात-दिन का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। एक वर्ष में दो अयन-उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं।

इसके आगे देवताओं के दिन-रात, मास-वर्ष आदि का वर्णन है जो कल्पनिक है। कहते हैं सत्युग में तपस्या, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान श्रेष्ठ है।

आगे सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना की गयी है। ब्रह्मा ने महतत्त्व (बुद्धि) प्रकट किया, महतत्त्व से मन प्रकट हुआ, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी प्रकट हुई। फिर नाना सृष्टियां हुईं। प्रलय के समय ऊपर से सूर्य तथा नीचे पृथ्वी से अग्नि की सात ज्वालाएं प्रकट होती हैं, उसी में सब प्राणी जल जाते हैं। फिर पृथ्वी जल में, जल आग में, आग वायु में, वायु आकाश में लीन होकर प्रलय हो जाता है (अध्याय - )।

### मीमांसा

लाखों वर्ष वाली चारों युगों की धारणा अवैदिक तो है ही, असत्य भी है। उत्पत्ति-प्रलय की कल्पना पुरानी है और अस्वाभाविक है। इसको इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी रचनाओं में सप्रमाण जगह-जगह लिखा है।

इसके आगे दो सौ चौतीस ( )वें अध्याय में ब्राह्मणों के कर्तव्य और दान की महिमा का वर्णन है। दो सौ पैंतीस ( )वें अध्याय में ब्राह्मणों के कर्तव्य और काल रूप नदी को पार करने का उपाय बताया गया है। कहा गया कि ब्राह्मण किसी को भी कष्ट न दे। दूसरे को दुख दिये बिना अपनी जीविका चलाने की इच्छा करे। संतों की सेवा में रहकर आत्मज्ञान प्राप्त करे, ज्ञाननिष्ठ हो और शास्त्रों पर व्याख्यान करे।

काल रूपी नदी बह रही है। उसमें वर्ष भंवर, महीने तरंग, ऋतु वेग, पक्ष लता और तृष्णा, निमेष-उन्मेष फेन, दिन-रात प्रवाह, काम ग्राह, वेद (ज्ञान) और यज्ञ (सेवा) नौका, धर्म द्वीप, सत्यभाषण और मोक्ष किनारा हैं। विवेकवान प्रज्ञारूपी नौका से संसार-नदी को पार कर जाते हैं—“ब्राह्मण यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना तथा दान देना और लेना इन तीन कर्मों को संदेह दृष्टि से ही देखे। अर्थात् इतने मात्र से कल्याण नहीं होगा। वह प्रज्ञा द्वारा अपने उद्धार का यत्न करे और काल-नदी से पार हो जाय।”

## . सांख्य-योग का फल

जैसे बहते हुए मनुष्य को नाव मिल जाय, तो वह पार हो जाता है, वैसे संसार की मोहधारा में बहते हुए जीव को उससे पार होने के लिए स्वरूपज्ञान का सहारा लेना चाहिए। जिन धीरवान मनुष्यों को आत्मतत्त्व का पूर्ण निश्चय हो गया है, वे संसार-सागर से स्वयं पार हो जाते हैं और अन्य को पार लगने में सहारा बन जाते हैं। आत्मज्ञान-हीन मनुष्य डूबते हैं और दूसरों को भी डुबाते हैं। संयत चित्त मुनि राग-द्वेष छोड़ दे और योग में सहायक देश, कर्म, अनुराग, अर्थ, उपाय, अपाय, निश्चय, चक्षुष, आहार, संहार, मन और दर्शन, इन बारह योगों का आधार लेकर ध्यानयोग का अभ्यास करे।

- . देशयोग-निर्जन, एकांत, समतल तथा शांत जगह बैठकर ध्यान करना।
- . कर्मयोग-आहार-विहार, सोना-जागना, चेष्टा-क्रिया का संतुलन।
- . अनुरागयोग-स्वरूपस्थिति तथा उसकी साधना में प्रेम, लगन और उत्साह होना।

---

. अवदातेषु संजातस्त्रिसंदेहस्त्रिकर्मकृत् ।  
तस्मादुन्मज्जने तिष्ठेत् प्रज्ञया निस्तरेद् यथा ,

. सांख्य-योग का फल

- . अर्थयोग-केवल आवश्यक वस्तुओं को रखना।
- . उपाययोग-ध्यानयोग्य आसन पर बैठना जो न कठोर हो और न बहुत कोमल हो।
- . अपाययोग-सारे प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों की आसक्ति मिटा देना।
- . निश्चययोग-आत्मज्ञान और साधना में दृढ़विश्वास।
- . चक्षुषयोग-नेत्र को सम रखना।
- . आहारयोग-शुद्ध, सात्विक और स्वल्प आहार लेना।
- . संहारयोग-विषयों की तरफ लगी हुई मन-इंद्रियों की प्रवृत्तियों को रोकना।
- . मनोयोग-संकल्प-विकल्प से मन को रहित करना।
- . दर्शनयोग-जन्म, मृत्यु, जरा-व्याधि तथा प्रिय-वियोग को दोषदृष्टि से देखना और वैराग्य प्रदीप करना।

मन-इंद्रिय को जीतकर बुद्धि को आत्मा में स्थित करे। चाहे महाक्रूर हो या वेदज्ञ अथवा वेदज्ञान-शून्य, धर्मपरायण हो या पापाचारी, संपन्न हो या दरिद्र; जो उपर्युक्त बारहों योगों का आचरण करेगा, वह मुक्ति-लाभ करेगा। पहले चाहे जैसा रहा हो, वर्तमान में पूर्ण ठीक हो जाने पर उसे शांति मिलती है। कल्याणार्थी वैदिक कर्मकांड से ऊपर उठ जाय- “शब्दब्रह्मातिवर्तते ( , )।” योग सुंदर रथ है। धर्म उसमें बैठने का आसन है। लज्जा आवरण है। उपर्युक्त उपाय और अपाय कूबर हैं। अपान वायु धुरा है। प्राण वायु जुआ है। बुद्धि आयु है। जीवन बंधन है। चैतन्य बंधुर (विनत) है। सदाचार नेमि है। ज्ञानेंद्रियां वाहन हैं। प्रज्ञा नाभि है। शास्त्र चाबुक है। ज्ञान सारथि है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) रथी है। यह रथ धीरे-धीरे चलता है। श्रद्धा और संयम आगे चलने वाले रक्षक हैं। त्याग पीछे रक्षक है। यह कल्याणकारी रथ ध्यान के पवित्र पथ पर चलता है। यह जीव का दिव्य रथ ब्रह्मलोक में पहुंचता है। अर्थात् योगी ब्रह्मरूप हो जाता है- “जीवयुक्तो रथो दिव्यो ब्रह्मलोके विराजते ( , )।”

इसके बाद आता है कि जड़ तत्त्वों-पृथ्वी आदि में धारणा, ध्यान तथा समाधि करके योगी सिद्ध हो जाता है। वह अपनी अंगुली से पृथ्वी को दबाकर उसे कंपित कर सकता है। वह शरीर को अंतर्धान कर सकता है इत्यादि।

इसके आगे सांख्य और योग में वर्णित पचीस तत्त्वों का संकेत है, फिर मिली-जुली बातें हैं। अंततः काम की बातें हैं कि सांख्यवादियों के अनुसार

महाभारत मीमांसा : बारहवां-शांति पर्व

विषयों का पूर्ण त्याग मोक्ष का लक्षण है- “विषयात् प्रतिसंहारः सांख्यानां सिद्धिलक्षणम् ( , )।” वह सब अहंकार छोड़ देता है, द्वंद्वतीत, संशय-रहित, क्रोध-द्वेष तथा असत्य से परे हो जाता है। वह किसी से गाली तथा मार पाकर उसका अहित नहीं सोचता, अपितु मित्रभाव रखता है। वह मन, वाणी और कर्म से किसी को कष्ट नहीं देता। सब में समता रखता है। ऐसी रहनी में रहने वाला ब्रह्म ही है- “ब्रह्माणमभिवर्तते ( , )।” वह इच्छा-अनिच्छा से परे, यथाप्राप्त संतुष्ट, निर्लोभ, पीड़ा-रहित, जितेंद्रिय, करने-न करने से ऊपर, स्थिर मन, समता तथा मैत्री भाव संपन्न, मिट्टी-पत्थर-स्वर्ण पर समान दृष्टि, प्रिय-अप्रिय-प्रपंच-रहित, निंदा-स्तुति में सम, धीरवान, प्रहाररहित, दृढ़ ब्रह्मचर्य में स्थित, पूर्ण अहिंसाव्रती सांख्यवादी मुक्त हो जाता है। अंततः पर-वैराग्यपूर्वक रहकर जो योग के ऐश्वर्य को लांघकर उसकी सीमा से बाहर चला जाता है, वही मुक्त होता है- “योगैश्वर्यमतिक्रांतो यो निष्क्रामति मुच्यते ( , )।”

## मीमांसा

योग-दर्शन के विभूतिपाद की असंभव काल्पनिक विभूतियों के वर्णन का ऊपर संकेत आता है कि योगी अंगुली से जमीन दबा दे तो उसमें भूचाल आ जायगा और वह अंतर्धान हो सकता है इत्यादि। वस्तुतः यह सब केवल कल्पना है और झूठी महिमा है। योगसिद्धि है मन की पूर्ण शांति। इसी का वर्णन इस संदर्भ के अंत में आया है।

## . शब्द ब्रह्म को लांघकर आत्मलीनता है

महर्षि वेदव्यास शुकदेव से कहते हैं-साधक को चाहिए कि वह विवेक-नाव का आधार लेकर डूबता-उतराता हुआ-गिरता-उठता हुआ हर परिस्थिति में शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिए साधना करे।

कोई समझता है कि यह जगत अपने स्वभाव से उत्पन्न होता और मिटता है। परंतु सब केवल स्वभाव से नहीं होता है। मनुष्य चेतन है, वह अनेक धंधे विचारकर करता है। कृषि, व्यवसाय, राज्य व्यवस्था, क्रीड़ा, मनोरंजन, नाना ज्ञान-विज्ञान चेतन मनुष्य सोच-समझकर करता है। संसार में नाना प्रकार के प्राणी हैं। वे अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के अनुसार काम करते हैं। संसार में धर्मज्ञ-अधर्मज्ञ, वेदज्ञ-अवेदज्ञ, प्रवक्ता-अप्रवक्ता, आत्मज्ञ-अनात्मज्ञ होते हैं।

. शब्द ब्रह्म को लांघकर आत्मलीनता है

जो प्रवृत्ति और निवृत्ति को जानता है वही सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, योगी, सत्यसंकल्प, सत्यवादी, पवित्र और कल्याण-कार्य में समर्थ होता है। जो शब्द ब्रह्म-शास्त्रचिंतन में निष्णात हो जाता है और शब्द ब्रह्म से ऊपर उठकर ब्रह्मज्ञान-आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे देवता एवं सज्जन लोग ब्राह्मण कहते हैं- “ब्रह्मज्ञानप्रतिष्ठं हि तं देवा ब्राह्मणं विदुः ( , )।” जो बाहर-भीतर मन तथा इंद्रियों को साध लेता है, वही अधियज्ञ तथा अधिदेव को चरितार्थ करने वाला है। वही देवता है, वही द्विज है- “ते देवाः तात ते द्विजाः ( , )” उन्हीं में मानो संसार प्रतिष्ठित है। उनकी महिमा की कोई तुलना नहीं है। वे जन्म-मरण कर्म की सीमा से पार होकर सर्वोच्च हो जाते हैं (अध्याय )।

आगे वेदव्यास कहते हैं कि संसार में नाना प्रकार के विचारक हैं। मनुष्यों को यह संदेह होता है कि कर्म स्वभाव से होता है या ज्ञान से? कुछ लोग इसका उत्तर देते हैं कि यदि वैदिक विधान के अनुसार हो तो वह ज्ञानजनित है, अन्यथा स्वाभाविक। कुछ लोग कर्म में पुरुषार्थ एवं प्रयत्न कारण मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि सब कुछ दैवाधीन अर्थात् प्रारब्धाधीन है। अन्य लोग स्वभाव का गुण गाते हैं। कुछ लोग पुरुषार्थ, प्रारब्ध तथा कालगत स्वभाव तीनों को कर्म में कारण मानते हैं। कुछ लोग तीनों को अलग न करके इसके समुच्चय को कारण मानते हैं। कुछ लोग संसार की समस्त वस्तुओं को कहते हैं कि ‘यह ऐसा ही है।’ दूसरे कहते हैं ‘यह ऐसा नहीं है।’ तीसरा कहता है कि ‘यह ऐसा है भी और नहीं भी।’ कुछ लोग कहते हैं कि ये दोनों मत संभव नहीं हैं। किंतु जो सदगुण में स्थित हैं वे समदर्शी होते हैं- “सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ( )।”

संसार का सारा पदार्थ कालग्रस्त है। इस कालग्रस्त द्वंद्वत्मक संसार में समस्त प्राणी निवास करते हैं।

वेदव्यास कहते हैं-विद्या, तप, इंद्रियनिग्रह और सर्वस्व त्याग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती है। मन इंद्रियों का प्रेरक है, परंतु हृदय-निवासी आत्मा मन के ऊपर है और मन पर राजा है। विवेकवान विद्वान शुद्ध मन से आत्मा द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करता है- “मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि ( , )।” आत्मा आत्मा द्वारा ही अपना उद्धार कर सकता है। अशरीरी निर्विकार आत्मा का शरीर में ही अनुसंधान हो सकता है। इस नाशवान शरीर में रहकर जो अपने अविनाशी आत्मा का अनुसंधान करता रहता है वह ब्रह्म हो जाता है, महान हो जाता है। पंडित वह है जो कुत्ता, श्वपच, विद्वान ब्राह्मण, गाय और हाथी में समान भाव से ब्रह्म-दर्शन करता है। जो

अपने में सबको तथा सब में अपने को देखता है, अर्थात् सबको अपने समान प्रिय समझता है, वह ब्रह्मरूप है। अपने शरीर में जैसे ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वैसे सबके शरीर में है, जिसे ऐसा निरंतर ज्ञान बना रहता है, वह अमृत में स्थित हो जाता है। जो संपूर्ण प्राणियों का आत्मा होकर, प्रिय होकर सबके हित में लगा रहता है और निरंतर आत्मलीन है, उसकी उच्च रहनी की दशा की थाह विद्वान भी नहीं पाते हैं। जैसे आकाश में पक्षियों तथा जल में मछलियों के पदचिह्न नहीं मिलते, वैसे आत्मलीन पुरुषों की स्थिति को बाहर से नहीं समझा जा सकता। जो अपने अविनाशी अमृतस्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो जाता है, वह भव-बंधनों से छूट जाता है (अध्याय )।

व्यास जी आगे कहते हैं-मन को समेटकर आत्मा में लगाना सांख्य और योग का मुख्य ज्ञान है। सम से क्रोध को, संकल्पों के त्याग से काम को, सतो गुण से आलस्य को, धैर्य से जीभ और नाभि (शिश्न-इंद्रिय) को, सावधानी से भय को और सेवा से दंभ को जीते। मन को पीड़ा देने वाली कठोर वाणी न बोले। सब प्राणियों में समता दृष्टि रखे। कुछ मिले या न मिले, संतोष रखे। मन के पाप को धो डाले। भोजन कम करे और मन-इंद्रियों को जीतकर ब्रह्मपद-आत्मपद प्राप्त करे। साधक रात के पहले और पिछले पहर में बैठकर मन को आत्मा में लगावे। जैसे घड़े में एक छेद हो जाय तो उसका पानी बह जाता है, वैसे शरीर की किसी इंद्रिय का पतन हो जाय तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अतएव साधक मन सहित सभी इंद्रियों को वश में करे। जब पांच ज्ञानेन्द्रिय-आंख, नाक, कान, जीभ, चाम तथा छटां मन वश में हो जाते हैं, तब बुद्धि पवित्र हो जाती है और साधक को आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

साधक जब साधना में सफल हो जाता है, तब उसको सम्मान-सत्कार मिलने लगते हैं। उस समय वह सावधान रहे। सम्मान-सत्कार में अहंभाव आना साधना में विघ्न है। द्रव्यलोभी जैसे द्रव्य को सम्हालकर रखता है, वैसे साधक मन-इंद्रियों पर संयम कर हृदय में विराजमान आत्मा का चिंतन करे। वह किसी स्थिति में भी उत्तेजना में न पड़े। जिस साधना से मन शांत रहे, साधक उसमें निरंतर लगा रहे। वह उससे कभी विचलित न हो। गुफा, देव-मंदिर तथा शून्य घर में साधना करे। साधक कहीं मोह एवं आसक्ति न करे। सबसे सब समय अनासक्त रहे। संतुलित भोजन करे और लाभ-हानि में समान भाव रखे। निंदा-प्रशंसा करने वालों में समान भाव रखे। किसी से मोह तथा किसी से वैर न करे। लौकिक लाभ में, हर्ष में फूले न तथा हानि होने पर शोक में पचके न। सब में समता रखे। रहने के घर में भी मोह न करे; क्योंकि सब

## . चारों आश्रमों के कर्तव्य एवं आचरण

कुछ छूटने वाला है। स्वस्थ, समदर्शी तथा निष्काम साधक शीघ्र ही शब्दजाल से ऊपर उठकर आत्मलीन हो जाता है। संसारी मनुष्य धन-लोभ से पीड़ित हैं, अतएव साधक धन के लोभ में न पड़े। साधक की साधना कभी शिथिल न हो। स्त्री-पुरुष तथा ऊंच-नीच सबको आत्मज्ञान तथा साधना करने का अधिकार है और कोई भी ब्राह्मीपद पा सकता है ( , )।

“जिसने अपने मन-इंद्रियों को पूर्णतया वश में कर लिया है, वह अजन्मा, शाश्वत, अजर, सनातन, नित्यमुक्त, अणु-से-अणु और महान-से-महान आत्मा का आत्मा द्वारा अनुभव करता है।” यथा-

*अजं पुराणमजरं सनातनं यदिन्द्रियैरुपलभेत निश्चलैः।*

*अणोरणीयो महतो महतरं तदात्मना पश्यति मुक्तमात्मवान्*

(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक )

## मीमांसा

इन संदर्भों में बीच-बीच में भावुकतापूर्ण बातें आती हैं जो अस्वाभाविक, कल्पित तथा सत्य से हटकर हैं; परंतु उसी जंजाल में ऊपर के हीरे-मोती-जैसे उत्तम ज्ञान और सीख हैं। हमें इस मानवीय ज्ञान-परंपरा से छानकर तथा सत्य का मोती निकालकर अपने और दूसरे के कल्याण में सहयोगी होना चाहिए।

## . चारों आश्रमों के कर्तव्य एवं आचरण

वेदव्यास ने कहा-कर्म से बंधन तथा ज्ञान से मोक्ष होता है। उच्च ऋषियों ने ब्रह्मचर्य से ही उत्तम गति पायी है। अतएव कल्याण की इच्छा रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करे। वानप्रस्थ दशा में वन में फल-मूल खाकर तपस्या करे, प्राणियों की हिंसा न करे। संन्यास लेकर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हुए साधना करे। मूसल की आवाज तथा धुंआ बंद होने पर भिक्षा के लिए जाय। स्तुति-निंदा पाकर उद्वेग-शून्य रहे और शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके फल-मूल जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करते हुए साधना में रत रहे।

शुकदेव ने कहा-कर्म करो और कर्म न करो, ये दोनों वचन वेदों में आते हैं। इन्हें कैसे समझा जाय? वेदव्यास ने कहा-ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास के आचरण राग-द्वेष-शून्य होकर करे तो कल्याण है। ये चारों आश्रम ब्राह्मी स्थिति तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां हैं। ब्रह्मचारी गुरुकुल में पचीस वर्ष की उम्र तक रहकर गुरु, गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र की सेवा करे। वहां

रहते हुए किसी का दोष न देखे। वह गुरु के सोने पर सोवे, उनके जागने के पहले जागे, और दास की तरह गुरु के घर के कार्यों को करे। गुरु जो आज्ञा दें उसके लिए यही उत्तर दे 'भगवन! इसे अभी पूरा किया।' कार्य करके गुरु के पास खड़ा हो जाय और कहे 'मेरे लिए क्या आज्ञा है?' इस प्रकार गुरु के सभी कार्य संपादित करे। सेवा के बाद गुरु के पास बैठकर उनसे अध्ययन करे। सबका आदर करे। किसी पर कलंक न लगावे। गुरु के पुकारने पर झट उनकी सेवा में उपस्थित हो जाय। बाहर-भीतर पवित्र रहे। कार्यकुशल हो, गुणवान तथा मधुरभाषी हो, श्रद्धाभरी दृष्टि से गुरु को देखे और अपने मन-इंद्रियों को वश में रखे। गुरु के जलपान तथा भोजन करने के बाद स्वयं जलपान-भोजन करे। उनके बैठने पर बैठे। गुरु की आज्ञा से काम करने के बाद उनको बतावे कि मैंने ये काम कर लिए। शिक्षा पूर्ण होने पर उन्हें दक्षिणा देकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे (अध्याय - )।

गृहस्थ ब्राह्मण की चार प्रकार की जीविका बतायी गयी है-कोठा भर अन्न का संग्रह, कूड़ा भर अन्न का संग्रह, मात्र एक दिन के लिए अन्न का संग्रह और खेत तथा अन्नमंडी में गिरे हुए अन्न-दाने बीनकर निर्वाह करना। पीछे-पीछे वाली वृत्ति उत्तम मानी गयी है।

गृहस्थ केवल अपने लिए ही भोजन न बनाये, अपितु अतिथियों के लिए भी बनाये। किसी जीव की हिंसा न करे। दिन में न सोवे। रात के शुरू तथा आखीर में नींद न ले। सबेरे-शाम दो ही समय भोजन करे, बीच में न खाय। द्वार पर आये हुए अतिथि सत्कार और भोजन पाये बिना न जायं। केवल अपनी स्त्री में सीमित रहे, वह भी केवल ऋतुकाल में। धर्म के ढोंगी, आत्मप्रशंसक, गुरु के साथ कपट रखने वाले भी गृहस्थ के घर में भोजन पाने के अधिकारी हैं। फिर साधु-संन्यासी की सेवा करना ही चाहिए। गृहस्थ सदैव विघस और अमृत का भोजन करे। अतिथि, परिवार, सेवक तथा आश्रयीजनों के खाने के बाद का भोजन विघस है और जानवरों को खिलाने के बाद का भोजन अमृत है। गृहस्थ इंद्रियजित हो, किसी का दोष न देखे। वह ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, जाति-भाई, पुत्र-पुत्री तथा नौकर-चाकर के साथ कभी विवाद न करे। जो इनके साथ कलह त्याग देता है, वह निष्पाप हो जाता है। इनसे हार मानकर रहने वाला मनुष्य संपूर्ण लोकों पर विजयी हो जाता है। बड़ा भाई पिता के समान, पत्नी-पुत्र अपना शरीर ही हैं और सेवक-नौकर छाया की तरह हैं। पुत्री तो दया का पात्र है- "दुहिता कृपणं परम् ( , )।" तात्पर्य है कि पुत्री अत्यंत दीन है। उस पर दया रखना ही चाहिए।

. चारों आश्रमों के कर्तव्य एवं आचरण

उपर्युक्त लोगों के द्वारा यदि अपना तिरस्कार तथा अपमान हो जाय तो क्रोध-रहित रहकर सहन करे। कष्ट और थकावट जीतकर धर्म का पालन करे। धन पाने के लोभ से कोई धर्मकार्य न आरंभ करे। जो दुखी न होकर गृहस्थ-धर्म का पालन करता है, वह अपना तथा आश्रयीजनों का उद्धार करता है।

जब गृहस्थी से मन विरक्त हो जाय, तब वानप्रस्थ हो जाय और तप करे। इनके कर्म दो सौ चौवालिस ( 240 )वें अध्याय में बताये गये हैं। अगले दो सौ पैतालीस ( 260 )वें अध्याय में संन्यास के नियम बताये गये हैं। संन्यासी अकेला रहे, त्याग-ग्रहण से ऊपर रहे। वह न अग्निहोत्र करे और न मठ बनावे। केवल भिक्षा-भोजन के लिए गांव में जाय। दूसरे दिन के लिए अन्न का संग्रह न करे, एकाग्रचित्त होकर मौनभाव से रहे। चौबीस घंटे में केवल एक बार संतुलित भोजन करे। भिक्षापात्र तथा कमंडलु रखे। वृक्ष के नीचे सोवे। साधारण कपड़े पहने। सब प्राणियों से उदास रहे। जो दूसरों द्वारा पाये हुए निंदा-प्रशंसा से पूर्णतया ऊपर रहता है, उनका प्रत्युत्तर नहीं देता है, वह सच्चा संन्यासी है। निंदा करने वाले की तरफ देखे भी नहीं और न निंदात्मक वचन सुने और किसी की निंदा न करे। अपनी निंदा सुनकर निर्विकार भाव से मौन रहे। संन्यासी जनसमुदाय से सावधान रहे, स्वादिष्ट भोजन की इच्छा न रखे तथा स्त्री-पुरुषों के शरीर को शव की तरह समझे। वह न जीने की इच्छा रखे और न मरने की। काल की प्रतीक्षा करे। जो किसी की निंदा नहीं करता, अपनी निंदा से दुखी नहीं होता और सबको अभयदान देता है, वह स्वयं निर्भय हो जाता है। जो मन, वाणी तथा शरीर से किसी की हिंसा नहीं करता, वह अमृत स्वरूप है।

जो आत्मज्ञान में तृप्त होकर भय तथा कामनाओं से मुक्त है, उस पर मृत्यु का बल नहीं लगता। वह मृत्यु-भय से मुक्त स्वतःतृप्त है। जो सर्वत्र अनासक्त है, किसी भी वस्तु को अपनी नहीं मानता है, कैवल्यभाव में विचरता और शांतभाव में रहता है, उसे सज्जन ब्राह्मण कहते हैं। सब जीव दुख से डरते हैं। इसलिए किसी को दुख नहीं देना चाहिए।

“उसे न रोष होता है, न मोह। वह मिट्टी तथा स्वर्ण को समान समझता है, पांच कोशों का अभिमान त्याग देता है और संधि-विग्रह तथा निंदा-स्तुति से रहित रहता है। उसकी दृष्टि में न कोई प्रिय है और न अप्रिय। वह भिक्षु उदासीन होकर विचरता एवं जीवनयापन करता है।” यथा-

*अरोषमोहः समलोष्टकांचनः प्रहीणकोशो गतसंधिविग्रहः।*

*अपेतनिन्दास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ( , )*